Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुदत्त

बुद्धि बनाम बहुमत

43
-B
47

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

167947

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्धि बनाम बहुमत

(एक विवेचनात्मक कथन)

गुरुदत्त

Complete Vedic Books Store
Yog, Vedic, Ayurvedic, Religious
All Yog & Organic Products
(91) 9541317278, 8869821400

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपनिषद्, दर्शन तथा वेदाध्ययन

वेद और वैदिक काल	40.00
वेद प्रवेशिका भाग—1	35.00
वेद प्रवेशिका भाग—2	35.00
वेद मंत्रों के देवता	60.00
सायंस और वेद	35.00
वेदों में इन्द्र	25.00
वेदों में सोम	25.00
विश्वेदेवा :	40.00
यजुर्वेद और गृहस्थ धर्म	40.00
विज्ञान और विज्ञान	40.00
सृष्टि रचना	50.00
ईश-केन-कठ उपनिषद्	50.00
मुण्डक माण्डुक्य उपनिषद्	40.00
प्रश्न ऐतरेय उपनिषद्	40.00
तैत्तिरीय उपनिषद्	40.00
ब्रह्मसूत्र—1 (भाष्य)	120.00
ब्रह्मसूत्र—2 (भाष्य)	80.00
सांख्य दर्शन (भाष्य)	200.00
न्याय दर्शन (भाष्य)	160.00
अद्वैत मीमांसा	35.00
श्रीमद्भगवद्गीता अध्ययन	85.00
श्रीमद्भगवद्गीता (भाष्य)	85.00
हमारी सांस्कृतिक धरोहर	150.00

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्धि बनाम बहुमत

एक विवेचनात्मक कथन

Central Library
167947
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar

गुरुदत्त

All Yog & Organic Products

081
167947

हिन्दी साहित्य सदन

नई दिल्ली - 05

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

© यांगेन्द्र दत्त

R
089.9143
TGGR-B

मूल्य 30.00
प्रकाशक हिन्दी साहित्य सदन
2 बी.डी. चैम्बर्स, 10/54 देश बन्धु गुप्ता रोड,
करोल बाग, नई दिल्ली-110005
email: indiabooks@rediffmail.com
फोन 51545969, 23553624
फैक्स 011-23553624
संस्करण 2004
मुद्रक संजीव आफसैट प्रेस, दिल्ली

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्ष साहित्य
Complete Vedic Books Store
Yog, Vedic, Ayurvedic, Relegious
All Yog & Organic Products
(M) 9541317278, 8869821468
Web.: aarshsahitya.com

प्राक्कथन

श्री गुरुदत्त जी ने पिछले ६० वर्षों से देश की राजनीति का गम्भीर अध्ययन किया है और लगभग १५ वर्ष तक सक्रिय राजनीति में भाग भी लिया है। राजनीति के गहन अध्ययन का परिचय हमें उनकी रचनाओं में मिलता है।

आज देश की राजनीति कितनी ओछी हो चुकी है, यह पाठकों को बताने की आवश्यकता नहीं रही। समाचार-पत्र इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। और यह भी तथ्य है कि सभी राजनैतिक दल इसमें दोषी हैं।

देश का दुभार्ग्य है कि हमारे शासकों ने समाजवाद तथा सेक्यूलरिज़म ये दो रोग समाज को लगा दिये हैं। लेखक का दृढ़ मत है कि ये दोनों रोग समाजरूपी शरीर को दीन-हीन बनाकर ही छोड़ेंगे। समाज इन दो (समाजवाद तथा सेक्यूलरिज़म) चक्कों की गाड़ी में सवार हो तीव्रगति से पतन की खड्ड में लुढ़कता जा रहा है।

इन दो वादों ने आज के राजनीतिज्ञों की बुद्धि इतनी भ्रष्ट कर दी है कि वे विचार तक नहीं कर सकते कि वे क्या कह रहे हैं, क्या कर रहे हैं तथा किस ओर जा रहे हैं।

लेखक ने अपनी इस रचना में इस सबका युक्ति-युक्त विश्लेषण प्रस्तुत किया है तथा एक दिशा प्रदान करने का यत्न किया है। आशा है बुद्धिशील पाठक वर्ग इससे लाभान्वित होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतिहास

इतिहास में भारतीय परम्पराएँ	*गुरुदत्त*	75.00
भारतवर्ष का संक्षिप्त इतिहास : सृष्टि रचना से रामोदय तक	*गुरुदत्त*	80.00
भारतवर्ष का बृहत् इतिहास 2 भाग	*पं. भगवद्दत्त*	1200.00
भारत का द्वितीय स्वातंत्र्य संग्राम	*पी.एन. ओक*	220.00
वेदिक विश्व राष्ट्र का इतिहास—1	*पी.एन. ओक*	65.00
वेदिक विश्व राष्ट्र का इतिहास—2	*पी.एन. ओक*	75.00
वेदिक विश्व राष्ट्र का इतिहास—3	*पी.एन. ओक*	65.00
वेदिक विश्व राष्ट्र का इतिहास—4	*पी.एन. ओक*	65.00
भारत में मुस्लिम सुल्तान—1	*पी.एन. ओक*	60.00
भारत में मुस्लिम सुल्तान—2	*पी.एन. ओक*	40.00
कौन कहता है अकबर महान् था	*पी.एन. ओक*	70.00
दिल्ली का लाल किला लालकोट है	*पी.एन. ओक*	40.00
आगरा का लाल किला हिन्दू भवन है	*पी.एन. ओक*	40.00
फतेहपुर सीकरी हिन्दू नगर है	*पी.एन. ओक*	40.00
लखनऊ के इमामबाड़े हिन्दू भवन हैं	*पी.एन. ओक*	30.00
ताजमहल मन्दिर भवन है	*पी.एन. ओक*	55.00
विश्व इतिहास के विलुप्त अध्याय	*पी.एन. ओक*	50.00
ताजमहल तेजो महालय शिव मन्दिर हैं	*पी.एन. ओक*	10.00
क्या भारत का इतिहास भारत के शत्रुओं द्वारा लिखा गया है ?	*पी.एन. ओक*	25.00
क्रिश्चियनिटी कृष्णनीति है	*पी.एन. ओक*	55.00
भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें	*पी.एन. ओक*	65.00
हास्यास्पद अंग्रेजी भाषा	*पी.एन. ओक*	40.00

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रम

१. भूमिका ९

२. प्रथम खण्ड ११-४१

बुद्धि—व्यक्ति और जगत्—व्यवस्था और अव्यवस्था—खण्ड का सारांश।

३. द्वितीय खण्ड ४२-५७

समाज—समाज की व्याख्या—राज्य की व्याख्या—स्थिर बुद्धि वालों में राज्य।

४. तृतीय खण्ड ५८-१०२

बुद्धि की होली—मूलाधिकार—मूलाधिकारों का स्रोत—धन का स्रोत।

५. चतुर्थ खण्ड १०३-११९

शिक्षा—भाषा का उपयोग—वेद मंत्र—शिक्षा के अंग।

६. पंचम् खण्ड १२०-१३८

अर्थ-व्यवस्था—समाजवाद और सामाजिकता—धनवान और निर्धन।

७. षष्ठ खण्ड १३९-१५७

प्रजातंत्र—प्रजातंत्र और जनमत।

८. उपसंहार १५८-१६७

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भूमिका

एक बार सुप्रसिद्ध नेता लाला लाजपतराय महात्मा गांधी का विरोध करने चल पड़े थे। यह सन् १९२१ की बात है। कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन नागपुर में हो रहा था। इस अधिवेशन में गांधीजी न-मिलवर्तन का प्रस्ताव उपस्थित करने वाले थे। कांग्रेस के प्रायः नेता भी लालाजी के साथ गांधीजी के प्रस्ताव का विरोध करना चाहते थे।

परन्तु नागपुर में जनता का उबाल देख, प्रायः नेता अपने विचार से डोल गये। वे अपनी ख्याति को भय में देख गांधीजी का विरोध करने के स्थान पर उनका समर्थन ही करने लगे थे।

यही है दोष वर्तमान डिमोक्रेसी में। नेतागण जो अपनी नेतागीरी की लालसा में लीन होते हैं, जन-प्रवाह में बह जाते हैं।

लाला लाजपतराय भी अपनी विचारित बात को छोड़ गांधीजी का समर्थन करने लगे थे।

पीछे अगणित लोग पकड़े गये और फिर गांधीजी ने अपना आन्दोलन वापस ले लिया। तब जाकर नेताओं की आँखें खुलीं।

परन्तु सत्य तक न पहुँच सकने के कारण नेतागण फिर वही भूल सन् १९३१ में कर बैठे।

हम समझते हैं कि सामान्य जनता की वाह-वाह की इच्छा करने वाले सदा ठोकर खाते हैं और जनता की वाह-वाह की इच्छा करने वाले ऐसे नेताओं की भीड़ में, भले लोगों की कोई सुनता नहीं।

बहुमत प्रायः अशुद्ध होता है और वर्तमान संसदीय प्रजातंत्र पद्धति में प्रायः वाह-वाह के भूखे ही आगे आते हैं। [illegible] करते हैं, नेता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनते हैं और फिर आने वाले निर्वाचनों में व्यय करने के लिये लाखों एकत्रित करने में लग जाते हैं।

अतः वर्तमान राजनीति की समस्या ही है बहुमत अथवा बुद्धिवाद। किसका अनुकरण करें ?

इसके विषय में ही कुछ विचार देने के लिये यह पुस्तक लिखी है। आशा है पाठकों का कुछ तो लाभ होगा। यही कामना है—"तमसो मा ज्योतिर्गमय"।

—गुरुदत्त

३० जून, १९७९
१८/२८ पंजाबी बाग,
नई दिल्ली-११००२६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम खण्ड

: १ :

बुद्धि—१

उपनिषदों में एक कथा कही है। कथा इस प्रकार है—

एक बार इन्द्रियों में विवाद उत्पन्न हो गया। सब कहने लगीं, हम सर्वश्रेष्ठ हैं, हम सर्वश्रेष्ठ हैं।

जब वे परस्पर निश्चय नहीं कर सकीं कि कौन सर्वश्रेष्ठ हैं तो वे प्रजापति के समक्ष आकर कहने लगीं कि वे बताएँ कि उनमें से कौन सर्व श्रेष्ठ है?

प्रजापति ने एक सुझाव दिया। उसने कहा, तुम में से प्रत्येक पृथक्-पृथक् कुछ काल के लिये शरीर छोड़कर देखो कि तुम्हारे बिना शरीर कार्य करता है अथवा नहीं। जिसके शरीर छोड़ने से शरीर का कार्य न चल सके, वह सर्वश्रेष्ठ है।

इन्द्रियों ने प्रजापति की सम्मति पर व्यवहार किया। पहले आँख ने शरीर को एक मास के लिए छोड़ा। एक मास के उपरान्त वह लौटी और देखने लगी कि शरीर का कार्य कैसे चलता रहा है।

शरीर का कार्य एक अन्धे व्यक्ति के समान चल रहा था। इसके उपरान्त कर्ण-इन्द्रिय ने शरीर को छोड़ा। उसके बिना बहरे व्यक्ति की भाँति कार्य चलता रहा। इस प्रकार एक-एक कर सब इन्द्रियाँ शरीर छोड़कर लौट आयीं और उन्होंने देखा कि उनके बिना भी शरीर का कार्य चलता रहा है, यद्यपि कार्य में दोष और कठिनाई हुई थी।

परन्तु महाप्राण जब शरीर को छोड़ने लगा तो शरीर ठंडा पड़ने लगा। वह मरणासन्न प्रतीत होने लगा। अन्य सब इन्द्रियाँ भी शिथिल होने लगीं। इस प्रकार निश्चय हो गया कि महाप्राण सर्वश्रेष्ठ इन्द्रिय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

महाप्राण शरीर में वह शक्ति है जिससे शरीर के आभ्यन्तरिक यंत्र कार्य करते हैं। उदाहरण के रूप में हृदय, जो रक्त-संचालन का कार्य करता है, वह महाप्राण के आश्रय ही करता है। यह दिन-रात जन्म से मरणपर्यन्त कार्य करता रहता है।

इसी प्रकार भोजन के गले से उतरते ही आगे और आगे धकेलने वाली शक्ति महाप्राण है। इसी के कारण भोजन पेट में पहुँचता है, मल-मूत्र और शरीर के अन्य रस गति करते हैं। मनुष्य चाहे अथवा न चाहे, महाप्राण अपना कार्य करता रहता है।

यह कहते हैं कि शरीर के मस्तिष्क में बैठा परमात्मा सब कार्य कर रहा है। परमात्मा का कार्य रोका जा सकता है, जब गोली मार कर प्राणी की हत्या कर दी जाये। अथवा विष खाकर या कुतुबमीनार से कूद कर, या अन्य किसी प्रकार से इस महाप्राण को शरीर से निकाल दिया जाये।

इसी कथन का वर्णन एक अन्य प्रकार से भी किया जाता है। मनुष्य शरीर में एक शक्ति है जो किसी भी कार्य को करने अथवा न करने में प्रेरित करती है। उदाहरण के रूप में एक मनुष्य प्रातः उठ भ्रमण के लिए निकलता है। वह कनाट प्लेस में मकान से निकल विचार करने लगता है कि किस ओर जाये? इण्डिया गेट की ओर घूमने जाये अथवा लक्ष्मीनारायण मन्दिर के पीछे पहाड़ी पर घूमने जाये। वह विचार करने लगता है कि पहाड़ी पर घूमने जायगा तो लौटते हुए गोल मार्केट से घर के लिये साग-भाजी भी ला सकेगा। यदि वह इण्डिया गेट की ओर जायेगा तो उधर से लौटते हुए साग-भाजी नहीं ला सकेगा।

यह विचार शरीर का कौन-सा अंग करता है? टाँगें जो भ्रमण करने में सबसे अधिक प्रयोग होने वाली हैं, नहीं करतीं। हाथ, आँख, कान इत्यादि भी यह विचार नहीं करते। जो भी अंग यह काम करता है, उसका नाम बुद्धि है।

सांख्यदर्शन में कहा है—

अध्यवसायो बुद्धिः।

तत्कार्यं धर्मादि॥ —२-१३, १४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन सूत्रों का अभिप्राय है कि निश्चय करने का नाम बुद्धि का है और वह निश्चय करती है करणीय तथा अकरणीय में।

एक अन्य उदाहरण लिया जा सकता है। एक मनुष्य हलवाई की दुकान के सामने से गुजरता है। यह दुकान पर लगी भिन्न-भिन्न प्रकार की मिठाईयाँ देख वह इच्छा करता है कि इनको खाना चाहिए। परन्तु वह हलवाई की दुकान की ओर जाने से पूर्व विचार करता है कि मिठाई खरीदने के लिये जेब में मूल्य है अथवा नहीं। वह जेब में हाथ डालकर देखता है अथवा स्मरण करता है कि वह घर से चलते समय अपना पर्स साथ लाया था अथवा नहीं।

जब धन का जेब में होने का पता मिल जाता है, तब वह विचार करता है कि वह अस्वस्थ है और इस अवस्था में मिठाई खाने से हानि हो सकती है। इस कारण वह निश्चय करता है कि आज मिठाई नहीं खायेगा।

यह निश्चय आँखें नहीं करतीं। मुख में रसना-इन्द्रिय भी नहीं करती। इसका निश्चय करने का एक यंत्र मनुष्य के मस्तिष्क में होता है, वह ही यह करता है। इसे बुद्धि कहते हैं। आँख, नाक, कान इत्यादि इन्द्रियाँ केवल कार्य करती हैं। शरीर में कार्य करने के यंत्रों को करण कहते हैं। करण तेरह हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, ग्यारहवीं आभ्यन्तरिक इन्द्रिय, बारहवां मन तथा तेरहवीं बुद्धि।

उपनिषद् की कथा में विवाद था शरीर को चालू रखने वाली इन्द्रियों में। उस विवाद में प्रजापति के निर्णय के अनुसार यह निश्चय हुआ था कि महाप्राण जो शरीर के भीतरी अंगों को चलाता है, सर्वश्रेष्ठ है।

यहाँ विवाद शरीर के अपने जीवित रहने का नहीं है वरन् शरीर के कार्य को दिशा देने का है। किस दिशा में कार्य किया जाये, यह कौन निश्चय करता है?

बताया है कि शरीर में कार्य करने के करण तेरह हैं। इन तेरह में ग्यारह इन्द्रियाँ हैं और बारहवां मन तथा तेरहवीं बुद्धि है।

इन्द्रियाँ देखती हैं, सुनती हैं, चखती हैं, सूंघती इत्यादि हैं। मन इनसे प्राप्त ज्ञान को संचय करता है। बुद्धि निश्चय करती है कि अमुक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्य वर्तमान परिस्थिति में करना ठीक है अथवा नहीं। अन्तिम आज्ञा देने वाला जीवात्मा है।

यदि इन्द्रियों में दोष हो तो मन और बुद्धि के कार्य में बाधा पड़ जाती है।

उदाहरण के रूप में हमारी आँख पर काला चश्मा चढ़ा हुआ है। हम श्वेत वस्त्र ख़रीदने जाते हैं। काले चश्मे से श्वेत वस्त्र भी काला दिखाई देता है। इस कारण मन, बुद्धि और जीवात्मा ठीक कार्य तब ही कर सकते हैं जब इन्द्रियाँ ठीक-ठीक ज्ञान दें।

इन्द्रियाँ ठीक ज्ञान दें, तब ही तो पूर्व के ज्ञान से तुलना की जा सकती है। यह पूर्व का ज्ञान मन में संचित रहता है। किसी की पत्नी ने कहा, मेरे लिये हरे रंग की मखमल दो ग़ज ले आओ।

वह व्यक्ति विचार करता है 'हरा' क्या होता है ? उसका मन कहता है वृक्ष के पत्तों का रंग हरा कहाता है। दूसरा प्रश्न उत्पन्न होता है मखमल क्या होती है ? मन ने बताया कि मुलायम बूरदार कपड़ा मखमल कहलाता है, जैसा पड़ोसी की लड़की के कुर्ते का है। ये दोनों बातें पूर्व ज्ञान से मन ने बतायीं। इस ज्ञान के आधार पर जब वह कपड़े वाले की दुकान पर जाता है और मांग करता है कि हरे रंग की मखमल दिखाए तो दुकानदार तीन-चार प्रकार की हरी मखमल दिखा देता है। देखने में हरे रंग की है। स्पर्श कर देखने में एक से दूसरी और दूसरी से तीसरी बढ़िया प्रतीत होती है। अब ग्राहक के समक्ष प्रश्न उपस्थित होता है कि कौन-सी ले ? वह जेब में दाम देखता है। वैसे भी वह अपनी पत्नी को प्रसन्न करने के लिये विचार करता है कि कौन-सी ले जिससे वह प्रसन्न होगी। इस प्रकार के प्रश्नों का उत्तर उसकी बुद्धि देती है।

अतः मनुष्य को कार्य की दिशा बताने वाला एक यंत्र मनुष्य के मस्तिष्क में रहता है, उसका नाम बुद्धि रखा गया है।

यह यंत्र कार्य करता है इन्द्रियों से प्राप्त ज्ञान के आधार पर तथा मन पर अंकित पूर्व के ज्ञान से उस ज्ञान की तुलना कर।

उदाहरण के रूप में एक व्यक्ति बाजार आम खरीदने जा रहा है। एक जानकार व्यक्ति उसे कहता है कि लखनऊ के दशहरी आम लाना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस व्यक्ति ने पहले कभी दशहरी आम देखा नहीं। इससे वह दुकान पर पहुँच पहिचान नहीं सकता कि दशहरी आम कौन से हैं और कौन से दशहरी नहीं हैं। वह दुकानदार से पूछता है। दुकानदार यदि चाहे तो घटिया आम भी दे सकता है।

इस कारण कार्य की दिशा निश्चय करने में जहाँ इन्द्रियाँ सहायक होती हैं, वहाँ मन भी सहायक होता है। यदि उस व्यक्ति ने पहले दशहरी आम देखा होगा, तो वह उसकी सूरत-शकल, उसकी गंध और स्वाद को जान पूर्व देखे तथा चखे से उसकी तुलना कर समझ सकता है कि कौन से आम दशहरी हैं।

तदनन्तर बुद्धि की राय जानकर जीवात्मा निश्चय करता है कि वह खरीदे अथवा न ?

जीवात्मा, मन पर संचित पूर्व ज्ञान से तुलना कर, बुद्धि को सम्मति से आज्ञा देता है कि कपड़ा, मखमल अथवा आम खरीदे अथवा न।

अतएव जब कार्य करने का समय आता है तो ज्ञानेन्द्रियों, मन और बुद्धि द्वारा निश्चित किया गया कार्य कर्मेन्द्रियों से होने लगता है।

इन तेरह करणों में पाँच कर्मेन्द्रियाँ तो शरीर के कार्य में आवश्यक होती हुई भी सम्मति नहीं देतीं अथवा कार्य में हाँ अथवा न करने में कुछ अधिकार नहीं रखतीं। शेष रह गयीं पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, आभ्यन्तरिक इन्द्रिय और मन। ज्ञानेन्द्रियाँ ज्ञान लाती हैं। आभ्यन्तरिक इन्द्रिय तो संयोग-स्थान है। मन ज्ञान का संचय स्थान है।

अतः निर्णय करने वाला यन्त्र बुद्धि ही है और उसके बिना कार्य की दिशा ठीक नहीं बनती।

ज्ञानेन्द्रियों का काम है, घट रही घटनाओं की सूचना लाना मात्र और मन तो एक प्रकार का पूर्ण ज्ञान का संचय स्थान है। इसे अंग्रेजी में 'रिकार्ड रूम' कहा जा सकता है। प्राप्त ज्ञान की पूर्व उपस्थित ज्ञान से तुलना और उस पर निश्चय कि कौन कार्य ठीक है, जो यन्त्र करता है, वह बुद्धि है। वह अपनी सम्मति जीवात्मा को देती है तब जीवात्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्य करता है।

: २ :

बुद्धि – २

ऊपर हमने यह बताया है कि शरीर का सर्वश्रेष्ठ आधार महाप्राण है। महाप्राण शरीर के आत्म-तत्त्व के अधीन नहीं। मनुष्य जब सो जाता है, शरीर के सब कार्य करने वाले अंग काम बन्द कर आराम करने लगते हैं। जीवात्मा सुषुप्ति अवस्था में क्या करता है, ज्ञात नहीं। इसके लिंग (चिह्न) जिनसे जीवात्मा के अस्तित्व का पता चलता है, वे एक सोये हुए शरीर में दिखाई नहीं देते।

न्यायदर्शन में आत्मा के लिंग इस प्रकार वर्णन किये हैं—

इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिङ्गम् ॥ —१-१-१०

अर्थ—आत्मा के लिंग हैं इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख और चेतना।

किसी वस्तु का लिंग वह लक्षण है जो किसी अन्य में न पाया जाता हो और जिससे वह दूसरे से पृथक् पहिचाना जा सके। अर्थात् जिस किसी में भी इच्छा होगी, उसमें आत्म-तत्त्व का होना समझा जायेगा। जिस पदार्थ में प्रतिकूल परिस्थिति का विरोध दिखाई दे, वह आत्म-तत्त्व है। इसी प्रकार अन्य लिंगों के विषय में कहा जा सकता है।

प्राणी के सो जाने पर ये छयों लिंग—इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, प्रयत्न और चेतना नहीं रहते। इसका अभिप्राय यह है कि सोये प्राणी में जीवात्मा सक्रिय नहीं होता।

जीवात्मा उसमें रहता तो है। यह इस प्रकार जाना जा सकता है कि मृत शव में और सोये शरीर में अन्तर होता है। दोनों में जीवात्मा के छयों लिंगों का अभाव दिखाई देता है परन्तु जीवित प्राणी में महाप्राण कार्य करता रहता है। केवल वे कार्य नहीं होते जो आत्मा के लिंग हैं। और फिर मनुष्य के जागने पर आत्मा के लिंग पुनः कार्य करने लगते हैं।

परन्तु मृत प्राणी में न तो महाप्राण रहता है, न आत्मा के लिंग।

दर्शनाचार्य इसका अभिप्राय यह बताते हैं कि जीवित और जाग्रत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राणी में दो आत्म-तत्त्व कार्य करते हैं। एक को जीवात्मा कहते हैं और दूसरे को परमात्मा कहते हैं।

इस विषय में ब्रह्मसूत्र में कहा है—

गुहां प्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनात् ॥

—ब्रह्मसूत्र १-२-११

अर्थ—गुहा (बहुत छोटे से रिक्त स्थान) में दो आत्म तत्त्व के देखे जाने से (यह ऊपर कही बात सिद्ध होती है)।

अभिप्राय यह है कि शरीर के एक छोटे से रिक्त स्थान में दो आत्म तत्त्व देखे जाते हैं, ऊपर कहे लक्षणों से।

इस प्रकार छः लिंगों वाला आत्म-तत्त्व शरीर में रहता है। इन छः लक्षणों से ही यह सिद्ध होता है कि यह आत्म-तत्त्व शरीर में आज्ञा देने वाला है, परन्तु करणीय और अकरणीय के विषय में बताने वाली तो ज्ञान-इन्द्रियाँ, मन तथा बुद्धि हैं। इनके सहाय से ही 'हाँ' अथवा 'न' का निर्णय होता है।

उसके विषय में प्रत्यक्ष प्रमाण है।

दो व्यक्ति हैं। एक को पीलिया का रोग है और दूसरा स्वस्थ है। पीलिया के रोगी को, आँख के गोलक में विकार आ जाने के कारण, सब वस्तुएँ पीली ही दिखाई देती हैं और स्वस्थ मनुष्य को वस्तुओं के स्वाभाविक रंग दिखाई देते हैं। पीलिये का रोगी पीले रंग की वस्तु को श्वेत से पृथक् करना चाहे तो नहीं कर सकेगा। वह चुनने के समय पीले और श्वेत में 'हाँ अथवा न' नहीं कर सकता। रंग चुनने में आँख ही सहायक होती है और आँख विकृत हो जाये अथवा न रहे तो रंगों में पहिचान नहीं हो सकती।

यही बात कर्णादि अन्य ज्ञानेन्द्रियों की है। ये सभी इन्द्रियाँ बुद्धि के 'हाँ' अथवा 'न करने में सहायक होती हैं।

इसी प्रकार मन भी किसी कार्य में 'हाँ' अथवा 'न' करने में सहायक होता है। यह इस प्रकार कि बुद्धि जब भी किसी कार्य के विषय में निर्णय लेने लगती है तो पूर्व वैसी ही वस्तु अथवा कार्य के परिणाम को स्मरण कर ही निर्णय लेती है। मन स्मृति-यंत्र है। इसमें ज्ञानेन्द्रियों द्वारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लाये ज्ञान की स्मृति संचित रहती है और बुद्धि इस संचित ज्ञान के आधार पर ही प्रस्तुत कार्य में 'हाँ' अथवा 'न' करती है।

एक उदाहरण से बात स्पष्ट हो जायेगी। एक मनुष्य ने कभी कटहल खाया था। केवल नमक लगा भून कर। उसने पेट में विकार उत्पन्न किया था। यह घटना मनुष्य को स्मरण रहती है। स्मरण रखने वाला यंत्र मन है। इस घटना के उपरान्त जब भी पाचक खाने के लिये कटहल बनाने लगता है तो वह पाचक को कहता है, इसमें मिर्च, खटाई, आजवायन और सोंठ डाल कर बनाओ, नहीं तो यह मेरे पेट में पीड़ा करेगा। यह कार्य की दिशा बतायी बुद्धि ने, परन्तु मन की स्मरण शक्ति के आश्रय। बुद्धि ने मन में उपस्थित पूर्व के अनुभवों की स्मृति से मुकाबिला कर यह कार्य किया है।

अतः यह सिद्ध हुआ कि कार्य जीवात्मा करता है। बुद्धि कार्य में परामर्श देती है। साथ ही यह भी पता चला कि बुद्धि की सम्मति बनने में सहायक हैं ज्ञानेन्द्रियाँ और मन।

हमने अभी तक दो ही बातें बतायी हैं। एक यह कि शरीर का सर्वश्रेष्ठ आधार है महाप्राण। प्राणी के कार्य में सर्वश्रेष्ठ सम्मतिदाता है बुद्धि जो ज्ञानेन्द्रियों और मन की सहायता से कार्य करती है।

: ३ :

बुद्धि—३

पृथिवी के सब प्राणियों में मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। संसार के देवताओं में मनुष्य की गणना की गई है। देवता उन पदार्थों को कहते हैं जो दिव्य गुण युक्त होते हैं। दिव्य का अर्थ है अपनी प्रकार के पदार्थों में अद्वितीय, लासानी।

वेदों के मंत्रों में कुछ मंत्र 'विश्वेदेवा' के विषय में भी हैं। देवताओं से अभिप्राय यह है कि उसमें दिव्य गुण वाले पदार्थों का वर्णन आया है। ऋग्वेद का एक पूर्ण सूक्त विश्वेदेवाः पर है। उन दिव्य पदार्थों में मनुष्य के विषय में मन्त्र इस प्रकार है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अस्य वामस्य पलितस्य होतुस्तस्य भ्राता मध्यमो अस्त्यश्नः ।
तृतीयो भ्राता घृतपृष्ठो अस्यात्रापश्यं विश्पतिं सप्तपुत्रम् ॥१॥
—ऋ० १-१६४-१

अर्थ—एक सुन्दर, वृद्धता को प्राप्त होने वाले, यज्ञ (कर्म) करने वाले का भाई उसके मध्य में बैठा है। वह भोग करता है। एक तीसरा भाई है जो इन दोनों की रक्षा और पालन करता है। वह अपने सात पुत्रों सहित यहाँ विराजमान है।

यह संक्षिप्त परन्तु स्पष्ट चित्र है प्राणी का और यह देवताओं के विवरण में सर्वप्रथम आया है।

कहा है कि यह सुन्दर शरीर है जो क्षण-क्षण वृद्धता को प्राप्त हो रहा है और जो कर्म करता है। इस शरीर का एक भाई अर्थात् इतने ही महत्त्व का एक तत्त्व इसके भीतर बैठा हुआ, पहले किये कर्मों का भोग कर रहा है। एक तीसरा तत्त्व है जो पहले दोनों की रक्षा और पालन कर रहा है और पालन करने में अपने सात पुत्रों से सहायता ले रहा है।

बूढ़ा हो रहा तो शरीर है। भोग करने वाला जीवात्मा है और रक्षा करने वाला है परमात्मा जो अपनी सात शक्तियों से इस शरीर की रक्षा और पालन करता है। ये सात शक्तियाँ हैं सात प्राण अर्थात्—

१. चक्षु-इन्द्रिय, २. श्रोत्र-इन्द्रिय, ३. घ्राण-इन्द्रिय, ४. रसना-इन्द्रिय, ५. स्पर्श-इन्द्रिय, ६. सब कर्मेन्द्रियों में एकसा प्राण और ७. महाप्राण।

ये सातों प्राण परमात्मा की शक्तियाँ हैं, जिनको परमात्मा का पुत्र कहा है।

इनमें से छः प्राण तो परमात्मा ने जीवात्मा के अधीन कर रखे हैं, परन्तु सातवें प्राण का संचालन वह स्वयं मनुष्य के शरीर में बैठा हुआ करता है।

यही कारण है कि जब मनुष्य थक कर सो जाता है तो छः प्राण काम करना छोड़ देते हैं। केवल सातवाँ प्राण (महाप्राण) ही कार्य करता रहता है। कारण यह कि परमात्मा थकता नहीं और सोता नहीं।

मनुष्य का वर्णन एक दूसरी प्रकार से भी हम बता चुके हैं। मनुष्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शरीर के कार्य करने में तेरह करण हैं।

करण दो प्रकार के हैं। एक जो केवल आदेश पालन करने वाले हैं और दूसरे जो आदेश निर्माण करने वाले और देने वाले हैं।

आदेश पालन करने वाले करण हैं हाथ, पाँव, मुख, गुदा और लिंग। आदेश निर्माण करने वाले करण हैं, चक्षु, श्रोत्र, रसना, घ्राण, स्पर्श, मन और बुद्धि। आदेश देने वाला है जीवात्मा।

ऊपर के मंत्र (ऋ० १-१६४-१) में वर्णन किया है कि सब प्राणियों में मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणी है अर्थात् यह दिव्यों में दिव्य है। यहाँ समझने की बात यह है कि सब प्राणियों से मनुष्य में क्या श्रेष्ठता है?

वैसे तो सब प्राणियों में शरीर है जो बूढ़ा हो रहा है। सब में जीवात्मा है और सब में परमात्मा व्यापक है जो सब की, अपने सात पुत्रों से रक्षा करता है। इस पर भी परमात्मा के सात पुत्रों में जो पुत्र आदेश सम्बन्धी राय देने वाले हैं, वे मनुष्य में श्रेष्ठतम हैं।

हमने बताया है कि आदेश सम्बन्धी राय देने वाले अर्थात् कर्म की दिशा बताने वाले करणों में पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, मन और बुद्धि हैं। प्राणों का यह संयोग (ज्ञानेन्द्रियाँ, मन और बुद्धि) ही मनुष्य में अन्य जन्तुओं से विशेष है। ज्ञानेन्द्रियों में भी कोई-कोई किसी-किसी निम्न जीव में विशेष होती है। उदाहरण के रूप में हिंसक जन्तुओं की आँख अँधेरे में भी देख लेती है। उल्लू को भी रात में दिखाई देता है। इसी प्रकार सांप के विषय में कहा जाता है कि इसकी श्रोत्र-इन्द्रिय मनुष्य की श्रोत्र-इन्द्रिय से तीव्र होती है।

परन्तु मन और बुद्धि में मनुष्य पृथ्वी पर के अन्य सब प्राणियों से श्रेष्ठ है।

मन है ज्ञान का संचय स्थान और बुद्धि है प्राप्त ज्ञान का विश्लेषण करने वाला यन्त्र। जो इन दो यन्त्रों के क्रियाकलापों के विषय में नहीं जानते, वे मनुष्य के विषय में कुछ नहीं जान सकते।

जैसे किसी विश्वविद्यालय में पुस्तकालय हो और इसमें विविध विषयों की पुस्तकें संग्रहित हों, तो विश्वविद्यालयों के प्राध्यापक आवश्यकता पड़ने पर उस पुस्तकालय के ग्रन्थों को पढ़कर अपना मार्ग पा सकते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

167347
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। इसी प्रकार मनुष्य में मन होता है। जो कुछ भी ज्ञान मनुष्य अपनी ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त करता है, यह उसे संचित रखता है।

बुद्धि इस संचित ज्ञान का विश्लेषण कर उसका निष्कर्ष निकाल कर जीवात्मा को बताती है और तब जीवात्मा उचित कार्य का आदेश देता है।

मनुष्य की इतर जीव-जन्तुओं से श्रेष्ठता मन और बुद्धि यंत्रों में ही है।

R 089.9143
GUR-B

पहले मन के विषय में समझ लेना चाहिए।

बाल्यकाल में कोई संगी-साथी था, जिसके साथ वह व्यक्ति खेलकूद तथा अन्य क्रीडाएं करता था। वे क्रीड़ाएँ प्राय: उसे वृद्धावस्था तथा स्मरण रहती हैं। कभी भूल भी जाती हैं तो उस काल के साथी के सामने आ जाने पर स्मरण हो आती हैं। वे स्मृति के स्थानपर जमा रहती हैं। पुस्तकालय में अलमारी में रखी पुस्तकों के समान ये स्मृतियाँ होती हैं। जैसे पुस्तक को खोल पढ़ने से उसमें लिखी बातें पता चलती हैं, इसी प्रकार जब जीवात्मा कोई अतीतकाल की घटना किसी कारण से स्मरण करता है तो वह स्पष्ट समक्ष आ जाती है।

स्मृति मन पर अंकित रहती है। जीवात्मा उसे स्मरण कर सकता है।

पूर्वकाल की घटनाओं को मन कभी भूल भी जाता है। यत्न करने पर भी स्मरण नहीं आतीं। यह इसी प्रकार है जैसे किसी कागज पर कोई लेख लिख कर रखे। लिखते समय भली-भाँति अच्छी स्याही से न लिखे तो काल व्यतीत होने पर लिखा मिट जाता है।

कोई घटना जब घटी, उस समय मनुष्य ने उस घटना की ओर ध्यान नहीं दिया अथवा घटना ऐसे ढंग से हुई कि उसने मनुष्य का ध्यान आकर्षित नहीं किया तो वह घटना मन के पटल पर भलीभाँति अंकित नहीं होती और वह शीघ्र ही मिट जाती है।

मन एक प्रकार की फोटोग्राफिक प्लेट है, जिस पर चित्र खिच जाता है और फिर जब जीवात्मा चाहे, उस पर अंकित स्मृति को स्मरण कर सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सांख्य दर्शन में कहा है—

(१) अदृष्ट अर्थात् पूर्व काल के किए कर्मों के उल्लास (प्रतिफल) स करणों में कार्य होने लगता है। यह कार्य पुरुष (जीवात्मा) के लिये होता है।[१]

उदाहरण के रूप में किसी ने रसगुल्ले का स्वाद लिया है। उस स्वाद के फलस्वरूप मनुष्य के करण काम करने लगते हैं और वह रसगुल्ले खाने के लिये चल पड़ता है।

(२) करण तेरह प्रकार के हैं। वे एक दूसरे से भिन्न-भिन्न हैं।[२]

तेरह की गणना में पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, एक आभ्यन्तरिक इन्द्रिय, मन तथा बुद्धि हैं। ये तेरह करण हैं।

(३) कर्मेन्द्रियां कार्य करती हैं कुल्हाड़े की भाँति।[3]

जैसे कुल्हाड़ा लकड़हारे के हाथ में उसके चलाने पर कार्य करता है, वैसे ही कर्मेन्द्रियां जीवात्मा के आदेश पर कार्य करती हैं।

परन्तु मन दूसरे ढंग पर कार्य करता है। जीवात्मा के कहने पर नहीं, यह स्वतः कार्य करता है। इसके कार्य के विषय में कहा है—

(४) दोनों प्रकार की इन्द्रियों में मन प्रधान होता है। जैसे संसार में काम करने वालों में जमादार होता है। यह कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों में चौधरी की भाँति कार्य करता है।[४]

ज्ञानेन्द्रियां ज्ञान लाती हैं। इनको स्मरण कर, मन शरीर के स्वामी जीवात्मा को बता देता है। जीवात्मा (बुद्धि से राय कर अथवा राय किये बिना) कर्मेन्द्रियों को कार्य करने के लिए आज्ञा दे देता है। मन ऐसे ही चौधरी है जैसे कर्मचारियों और स्वामी के भीतर जमादार होता है अथवा प्रबन्धक होता है।

---

१. पुरुषार्थं करणोद्भवोऽप्यदृष्टोल्लासात् ॥ —सां० २-३६
२. करणं त्रयोदशविधमवान्तरभेदात् ॥ —सां० २-३८
३. इन्द्रियेषु साधकतमत्वयोगात् कुठारवत् ॥ —सां० २-३९
४. द्वयोः प्रधानं मनो लोकवद् भृत्यवर्गेषु ॥ —सां० २-४०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(५) मन का एक अन्य कार्य है। मन संस्कारों का आधार होता है। आधार का मतलब है रहने का स्थान। संस्कार का अभिप्राय है ज्ञान की स्मृति।[५]

अभिप्राय यह है कि मन के दो प्रकार के कार्य बताये हैं। एक हैं कर्मचारियों में जमादार का, जो ज्ञान प्राप्त हुआ वह जीवात्मा तक पहुंचा दिया और जीवात्मा की जो आज्ञा हुई वह कर्मेन्द्रियों को करने के लिये कह दी।

मम का दूसरा काम है ज्ञान के संस्कार संचय करना। ये संस्कार निःशेष (समाप्त) नहीं हो जाते। कर्म के उपरान्त भी बने रहते हैं।

यह है प्रक्रिया कर्म की। ऊदाहरण के रूप में आँख ने देखा कि सामने प्लेट में रसगुल्ले रखे हैं। आँख का संदेश मन को मिला। मन ने यह संदेश जीवात्मा को दिया और साथ ही बता दिया कि ये बहुत ही स्वादिष्ट होते हैं। जीवात्मा ने खाने की इच्छा की और हाथों को आदेश दे दिया कि एक रसगुल्ला उठा कर मुख में डाल लो। इच्छा इतनी प्रबल थी कि इस बात का विचार करने का अवसर ही नहीं था कि रसगुल्ले किस के हैं। यदि किसी दूसरे के लिए हैं तो वे उस दूसरे से कैसे प्राप्त किये जायें? अथवा यदि अपने लिए ही हैं तो यह विचार करने का अवसर ही नहीं रहा कि पेट में उस समय अपच का रोग है और रसगुल्ले खाने से हानि होगी।

परन्तु कभी इच्छा इतनी प्रबल नहीं होती। तब बुद्धि से राय की जा सकती है। बुद्धि विचार कर बताती है कि रसगुल्ले उठा कर खाने नहीं चाहियें क्योंकि ये किसी दूसरे के हैं अथवा पेट ठीक नहीं है और इनके खाने से कष्ट होगा। यह कार्य बुद्धि करती है। बुद्धि सब प्रकार से विचार कर बताती है कि रसगुल्ले नहीं खाने चाहियें।

इसी प्रकार अन्य इन्द्रियों के विषय हैं। विषय इन्द्रिय से अनुभव किया जाता है और मन को सूचित कर दिया जाता है। श्रेष्ठ जीवात्मा बुद्धि से विचार कर निर्णय करता है कि कर्म किया जाये अथवा न किया जाये।

---

५. तथाऽशेषसंस्काराधारत्वात् ॥ —सां० २-४२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह है मन और बुद्धि का कार्य। ये दोनों यन्त्र मनुष्यों में विशेष हैं। पशुओं में और इतर् जीव-जन्तुओं में ये यंत्र बहुत ही घटिया होते हैं।

उदाहरण के रूप में एक गाय है। वह कहीं जा रही है। जाते हुए उसे सड़क के किनारे खेतों में हरी-हरी लहराती खेती दिखाई दे जाती है। उसकी आंख ने उसको संदेश दिया कि हरी-भरी खेती है, खाने में बहुत स्वादिष्ट होगी। आँखें इस प्रकार का संदेश गाय के जीवात्मा को देती हैं। गाय के बुद्धि नहीं है और बिना उससे राय किये जीवात्मा आज्ञा दे देता है, खेत में घुस जाओ और खा लो। गाय खेत में चली जाती है। खेत का स्वामी लाठी ले भागा हुआ आता है और गाय को लाठी का प्रहार कर खेत से बाहर कर देता है।

गाय पुनः सड़क पर चल पड़ती है। कुछ ही दूर जा सड़क के किनारे एक दुकान पर एक टोकरे में चने की दाल रखी है। आखें देखती हैं और दाल खाने का संदेश मन के द्वारा गाय के जीवात्मा को देती हैं। जीवात्मा पूर्ववत् मन के द्वारा मुख को आज्ञा देता है कि टोकरे में मुख डाल दो।

वहां से भी दुकानदार की लाठी लगती है। गाय भाग खड़ी होती है। न तो उसका मन इतना श्रेष्ठ है कि एक समय लगी लाठी स्मरण रखे और न ही उसकी बुद्धि इतनी तीक्ष्ण है कि उसे राय दे सके कि खेत के स्वामी से मांग कर या उसे धोखा देकर हरी खेती का भोग कर सके अथवा दुकानदार की चने की दाल खा सके।

इसी प्रकार अन्य कार्यों मे होता है।

यह है हमारा अभिप्राय जब हम कहते हैं कि मनुष्य के करणों में आदेश देने वाले और आदेश सम्बन्धी सम्मति देने वाले करण इतर् जन्तुओं से श्रेष्ठ हैं।

आदेश की राय देने वाले यन्त्र हैं—ज्ञानेन्द्रियां, मन और बुद्धि। इन्हीं में है मनुष्य की श्रेष्ठता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

: ४ :

व्यक्ति और जगत्

'यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे' यह नियम जैसा शरीर में वैसा ही ब्रह्माण्ड में समान रूपेण कार्य होता है। ब्रह्माण्ड को ब्रह्म का शरीर माना है। ब्रह्माण्ड के भी सब पदार्थ, शरीर की भांति प्रति क्षण क्षरित हो रहे हैं। 'जगत्यां-जगत्' अर्थात् गतिशील जगत् शरीर है। इसमें परमात्मा सब की आयु को खाता चला जाता है। जगत् के सम्बन्ध में परमात्मा के प्राण अर्थात् सात प्रकार की शक्तियां जो इस जगत् की रक्षा और पालन करती हैं, वे भी प्राण ही कहाती हैं। वेद इस प्राण के विषय में कहता है—

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे ।
यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम् ।।

अथर्ववेद ११-४-१

प्राणों को नमस्कार है (हम प्राण का आदर करें।) जिसके वश में पूर्ण जगत् है। जो सब प्राणियों की रचना करने वाला है और जिसमें सब कुछ स्थित है।

इसी प्राण से जगत् का व्यवहार चलता है। यह प्राण सात प्रकार का है। यथा—(१) अग्नि, (२) वायु, (३) परिमण्डलान्तर्गत शक्ति (inter-atomic energy), (४) रासायनिक शक्ति (Chemical affinity) (५) आण्विक कम्पन शक्ति (molecular dynamics), (६) भू-आकर्षण (gravity) तथा (७) चुम्बकीय शक्ति (magnetic force)।

इस प्रकार ये सात प्रकार के प्राण चलायमान जगत् की रक्षा और पालन करते हैं। वैदिक सिद्धान्त है कि मनुष्य का शरीर जिस प्रकार कार्य करता है, वैसा ही चलायमान जगत् (सूर्य, चन्द्र, तारागण इत्यादि) कार्य करता है।

अन्तर यह है कि प्राणियों के शरीरों में पृथक्-पृथक् जीवात्मा होता है और जगत् के पदार्थों में पृथक्-पृथक् कोई जीवात्मा नहीं होता। यही कारण है कि जहां जीवात्मा अपने कर्मफल से जन्म-मरण के बन्धन में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फँसे हुए हैं, वहाँ जगत् के पदार्थ न तो कुछ कर्म करते हैं, न ही वे कर्म-फल से बँधे हुए हैं।

अग्नि से अभिप्राय उस अग्नि से है जिससे सृष्टि-रचना आरम्भ हुई थी। वेद में इसका वर्णन इस प्रकार है—

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्॥

—ऋ० १-१-१

अर्थ है—

हे अग्नि ! हम तुम्हारी स्तुति करते (गुण, कर्म, स्वभाव का स्मरण करते) हैं। तुम सृष्टि-रचना से पहले हमारे हित में काम कर रही थीं। सृष्टि-रचना यज्ञ भी तुम करने वाली हो और हमें अन्न, धन-दौलत देने वाली हो।

यह अग्नि वह शक्ति है, जिससे जगत् की रचना हुई है।

वायु के विषय में भी वेद में कहा है—

वायवा याहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः। तेषां पाहि श्रुधी हवम्॥

—ऋ० १-२-१

अर्थ है—

वायु (वस्तुओं) को प्राप्त होती है तो इसका दर्शन (ज्ञान दृष्टि से) होता है। यह संसार के पदार्थों को सुन्दरतम बनाती है। वायु से ही उनकी रक्षा होती है।

भावार्थ यह है कि पदार्थों में और उसके अणुओं में गति वायु से उत्पन्न होती है।

इस प्रकार कहा है कि जैसे शरीर में (सात प्राणों से) कार्य होता है, वैसे ही जगत् में भी सात प्राणों से ही कार्य होता है।

: ५ :

व्यक्ति और समाज

ईश्वरीय शक्तियाँ जिस प्रकार प्राणी के शरीर में कार्य करती हैं, उसी प्रकार समाज में भी कार्य करती है।

प्राणी के शरीर के अंगों को हम दो श्रेणियों में बाँट सकते हैं। एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदेश निर्माण करने वाले और आदेश देने वाले अंग और दूसरे आदेश पाने अथवा मानने वाले अंग। आदेश निर्माण करने वाले अंग हैं—(१) ज्ञानेन्द्रियाँ, मन तथा बुद्धि। आदेश देने वाला तत्त्व है जीवात्मा। और आदेश मानने वाले अंग हैं कर्मेन्द्रियाँ।

इसी प्रकार समाज में विभाजन किया गया है। समाज के घटकों का विभाजन पाँच प्रकार के प्राणियों में है। इनको वेद में पंचजनाः कहा है। इस विषय में वेदमंत्र है—

तदद्य वाचः प्रथमं मसीय येनासुरां अभि देवा असाम।
ऊर्जाद उत यज्ञियासः पंचजना मम होत्रं जुषध्वम्॥

—ऋ० १०-५३-४

अर्थ हैं—

हम पंचजनाः (समाज के पाँचों अंग) वेद मंत्रों पर मनन कर ईश्वर की दी हुई ऊर्जा का प्रयोग करें और लोक-कल्याण के कार्य करें। इससे असुरों पर विजय प्राप्त करें।

सब मानव समाजों में पाँच प्रकार के प्राणी ही हैं, इसका अभिप्राय यह है कि मानव समाज में कार्यों के विचार से पाँच प्रकार के जनसमूह होते हैं।

एक अन्य मंत्र में भी इन पाँच प्रकार के जनसमूह की गणना करायी है। मंत्र है—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्यां्, शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय···॥

—यजुः० २६-२

अर्थ हैं—

यह मेरी कल्याणमयी वाणी सम्पूर्ण (सब अंगों सहित) सब मनुष्य मात्र के लिये है। (और मनुष्यों में हैं—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अरण)।

यहाँ इस मंत्र में भी मनुष्य समाज के पाँच ही भाग माने हैं।

अब इस समाज के इन अंगों की तुलना मनुष्य शरीर से भी की है। कहा है ब्राह्मण मुख है। क्षत्रिय बाहु हैं, वैश्य जंघाएँ हैं, शूद्र पाँवों हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार समाज के पाँच अंग वेद मानता है और इन पाँचों के कार्य की तुलना शरीर से की जा सकती है।

मुख, मनुष्य शरीर में पूर्ण शरीर का प्रवक्ता कहा जाता है। यदि शरीर के किसी भी अंग में कोई कष्ट हो तो उस कष्ट को प्रकट करने वाला मुख ही होता है। कष्ट भले ही पाँव में हो, परन्तु उसका वर्णन मुख ही करता है।

बाँहें शरीर की रक्षा के लिये होती हैं और जंघाएँ पूर्ण शरीर को आश्रय देने वाली हैं। पाँव शरीर को उठाकर इधर-उधर ले जाते हैं।

समाज की तुलना मानव शरीर से एक अन्य प्रकार से भी की जाती है।

विचार यंत्र और आदेश यंत्र मुख्यत: प्राणी के सिर भाग में होता है। पाँच ज्ञानेन्द्रियों में चार के गोलक तो सिर में ही स्थित हैं। आँख, कान, नाक और रसना, ये सब सिर में ही हैं। त्वचा अर्थात् स्पर्श-इन्द्रिय है तो पूर्ण शरीर में, परन्तु यह सिर में भी है। इस कारण मानव शरीर में आदेश निर्माण करने वाले और आदेश देने वाले अंग ज्ञानेन्द्रियाँ, मन, बुद्धि और जीवात्मा मनुष्य के सिर-भाग में ही होते हैं। परन्तु आदेश पालन करने वाले अंग पूर्ण शरीर में फैले हुए हैं। हाथ रक्षा का काम करते हैं। पाँव शूद्र का सा काम करते हैं और पेट तथा जंघाएँ वैश्य का कार्य करती हैं।

गुदा और मुत्रेन्द्रिय भी शरीर के नीचे के भाग में ही होती हैं।

मानव शरीर और समाज में तुलना केवल स्थान के विचार से ही नहीं की जाती, वरन् इनके कार्यों की भी तुलना की जा सकती है। जैसे इस खण्ड की प्रथम कण्डिका में शरीर के अंगों की और उनके कर्मों की श्रेष्ठता के विषय में वर्णन किया है, उसकी तुलना यहाँ मानव समाज से भी की जा सकती है।

समाज में श्रेष्ठ अंग है ज्ञान प्राप्त करने वाला और ज्ञान का संचय करने वाला। दूसरे शब्दों में ब्राह्मण (विद्वत्) वर्ग ज्ञानेन्द्रियों की भाँति ज्ञान प्राप्त करता है। वे ही उसे संचय कर रखते हैं और फिर बुद्धि की भाँति उस ज्ञान का विश्लेषण कर, समाज को आदेश पालन करने वाले अंगों को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर्म करने के लिये प्रेरित करते हैं।

जैसे हाथ, पाँव, वाणी, यंत्र, लिंग और गुदा अंग अपने कष्टों की सूचना मन और बुद्धि को देते हैं, वैसे ही समाज में शूद्र, वैश्य और क्षत्रिय वर्ण अपने कष्टों की सूचना विद्वानों को देते हैं और फिर मन तथा बुद्धि की भाँति, विद्वान समाज के विभिन्न अंगों के कष्ट की चिकित्सा करते हैं।

मनुष्य समाज और शरीर के विभिन्न अंगों में अन्तर भी है। प्रत्येक मनुष्य के अंगों के कर्मों का निश्चय उसके गुण, कर्म, स्वभाव से होता है और गुण, कर्म, स्वभाव मनुष्य की आयु, शिक्षा और खान-पान के अनुसार बदलते रहते हैं। शरीर में ऐसा नहीं होता। मनुष्य के शरीर में जो-जो अंग हाथ, पाँव का कार्य करने के लिये बने हैं, वे ही वे कार्य कर सकते हैं। पेट, पेट का ही काम कर सकता है। गुदा और लिंग के भी काम बदले नहीं जा सकते।

इस बात का ध्यान रख कर ही समाज के कार्यों का विभाजन करना होता है।

इसी कारण यह कहा है कि मनुष्य में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र वर्ग गुण, कर्म तथा स्वभाव से ही निश्चय होते हैं। भगवद्गीता में कहा है—

ब्राह्मणक्षत्रियविशां शूद्राणां च परंतप।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः॥

भगवद्गीता १८-४१

अर्थ है—

गुण, कर्म और स्वभाव से ही मनुष्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की श्रेणियों में बाँटे जाते हैं।

ये गुण, कर्म, स्वभाव पूर्वजन्म के कर्मों से हों, माता-पिता के घर के संस्कारों से हों अथवा मनुष्य की अपनी शिक्षा-दीक्षा और प्रयत्न से हों, किसी भी कारण से हों, उसके आधार पर ही वर्ण मानने चाहिएँ और उसके अनुसार ही समाज को उनसे काम लेना चाहिए।

जैसे पाँव, आँख, कान इत्यादि का कार्य नहीं कर सकते, वैसे ही एक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनपढ़ अथवा बुद्धि से हीन व्यक्ति अध्यापन का कार्य नहीं कर सकता। एक दुर्बल रुग्ण शरीर वाला सेना में भरती नहीं किया जा सकता।

अतः हमने बताया है कि संसार की पूर्ण कर्म-योजना एक ही विधि-विधान से बनी है। जो कुछ ब्रह्माण्ड में होता देखा जाता है, वही कुछ प्राणी के शरीर में हो रहा है और वही मनुष्य-समाज में हो रहा है।

प्रकृति का यह विधान है कि आदेश निर्माण और आदेश देने वाले अंग विशेष गुणों के स्वामी होने चाहिएँ और आदेश पालन करने वाले अन्य गुणों से युक्त हों। ये भिन्न-भिन्न प्रकार के कार्य उन अंगों से तब तक ही लिए जाने चाहिएँ, जब तक उनमें अपने गुण तथा कर्म करने का सामर्थ्य होता है।

मनुष्य शरीर हो, मानवों का कोई संगठन हो, कोई उद्योग-धन्धा हो अथवा राज्य-कार्य हो, सब में एक ही सिद्धान्त कार्य करता है।

: ६ :

व्यवस्था और अव्यवस्था—१

मनुष्य शरीर में वैसा विवाद कभी हुआ था अथवा नहीं, जैसा कि विवाद उपनिषद् में इन्द्रियों में हुआ कहा गया है, परन्तु मनुष्य-समाज में तो ऐसा विवाद निरन्तर होता देखा जाता है। लोग जो एक कार्य करने की योग्यता नहीं रखते, उस कार्य को करने की लालसा करने लगते हैं। इसमें मुख्य कारण है मन के विकार—काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा अहंकार।

इन विकारों के कारण मनुष्य में एक श्रेष्ठ स्मृति-यंत्र का होना आवश्यक है। श्रेष्ठ मन ही इन विकारों को नियंत्रण में रख सकता है।

मन का एक विकार है काम। कुछ प्राप्ति की इच्छा को कामना कहते हैं। कामना की पूर्ति न हो तो विक्षोभ होता है। यह क्रोध है। कामना की पूर्ति धन, सम्पदा तथा सामर्थ्य से होती है। इस सामर्थ्य की अधिक-से-अधिक प्राप्ति की इच्छा को लोभ कहते हैं। जो प्राप्त है उसको रखने की योग्यता न होने पर भी उसे समेटे रखना मोह कहाता है। किसी सामर्थ्य को रखने का प्रदर्शन, उनके सम्मुख जो वैसी सामर्थ्य नहीं रखते, अहंकार है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये सब विकार मन के हैं और मन के स्मृति गुण के कारण उत्पन्न होते हैं।

मन का एक अन्य गुण है। इसे कल्पना करना कहते हैं। मन पूर्व स्मृतियों पर योजनाएँ बनाता है। जब ये योजनाएँ स्मृतियों के आधार पर बनती हैं तो मनुष्य को पथच्युत करने में सफल हो जाती हैं।

शरीर का कोई अंग जब किसी कार्य को करने की योग्यता नहीं रखता तो वह उस कार्य को करता ही नहीं। आँख सुनने का कार्य नहीं करती। कान स्वाद लेने का कार्य नहीं करता।

परन्तु मनुष्य समाज में, कामनाओं के अधीन मनुष्य उस कार्य को भी करने का यत्न करता है जिसे करने की योग्यता उसमें नहीं होती और जब वह अयोग्य होने के कारण असफल होता है तो इसमें ऐसे कारण ढूंढने लगता है जिससे अपनी असफलता का दोष दूसरों पर डाल सके। यही समाज में अव्यवस्था का मुख्य कारण होता है।

जब भी, किसी समाज में अव्यवस्था का कारण हम जानने का यत्न करें तो पता चलेगा कि उसमें मूल कारण यह है कि कोई व्यक्ति अयोग्य होता हुआ अधिकार प्राप्त किये हुए है अथवा कर रहा है। योग्यता ही अधिकार में कारण हो सकती है। यह हमने बताया है ब्रह्माण्ड में, प्राणी के शरीर में और समाज में कार्य एक समान होता है।

जहाँ पाँव सिर का काम करने लगें तो उस प्राणी की जो अवस्था होगी, वही अवस्था एक शूद्र (अयोग्य) व्यक्ति के अध्यापक, राज्य का मंत्री अथवा राजा बन जाने पर होती है।

ज्ञान का संग्रह और ज्ञान का विश्लेषण कर, उस पर आज्ञा देने का कार्य ज्ञानेन्द्रियाँ, मन, बुद्धि और जीवात्मा के समान योग्य व्यक्ति ही कर सकते हैं।

मनुष्य के शरीर में अथवा मानव-समाज में अव्यवस्था का मूल कारण यही होता है कि जो अधिकार पाने के योग्य नहीं, वे अधिकार पाने का यत्न करते हैं अथवा पा जाते हैं।

शरीर का उदाहरण ले सकते हैं। अति स्वादिष्ट चटपटी चाट सामने आती है। पेट का रोगी मनुष्य उस चाट को देखता है और उसके मुख में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लार टपकने लगती है।

चाट खाने का आदेश तो जीवात्मा देता है और वह भी बुद्धि से विचार करने पर कि उसके पेट की अवस्था उस चाट को हज़म करने की है अथवा नहीं? कभी मनुष्य चाट खाकर हज़म कर सकने की शक्ति भी रखता है, परन्तु जिह्वा पूर्ण थाल में रखा सब कुछ खा जाने को कह रही है। यह जिह्वा का कार्य नहीं कि उसको चाट खाने की सीमा बताए। यह बुद्धि का कार्य है। अतः चाट खाने वाला बुद्धि की स्वीकृति के बिना अथवा बुद्धि द्वारा सीमा निश्चय किये बिना चाट खाता जाये तो पूर्ण शरीर में अव्यवस्था (रोग) की सृष्टि होगी।

यही अवस्था समाज की है। कोई अनाधिकारी समाज के किसी कार्य का संचालन करने लगता है तो समाज में अव्यवस्था उत्पन्न होती है। समाज के प्रत्येक घटक अथवा घटक-समूह (वर्ण) के कार्य को यदि बुद्धि के प्रतीक विद्वान् व्यक्ति की राय के बिना किया जायेगा तो अन्ततोगत्वा समाज में अव्यवस्था उत्पन्न होगी। और फिर जैसे शरीर के पेट में चाट खाने से अपची होने पर पूर्ण शरीर कष्ट भोगता है, उसी प्रकार अव्यवस्था केवल समाज के उस अंग में ही सीमित नहीं रहेगी, जिसमें वह अयोग्य व्यक्ति अधिकारी बना हुआ है, वरन् पूर्ण समाज में ही उत्पन्न हो जाएगी।

जैसे शरीर में श्रेष्ठ बुद्धि के सर्वत्र और सर्वदा प्रयोग की आवश्यकता है, उसी प्रकार समाज में सर्वत्र और सर्वदा श्रेष्ठ विद्वानों की राय से कार्य करने की आवश्यकता है।

कभी योग्य डाक्टर, हकीम अथवा वैद्य शरीर के किसी अंग के रोग को उसी अंग तक सीमित रखने में सफलता प्राप्त करता है, परन्तु इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि एक अंग के रुग्ण होने से शरीर के दूसरे अंगों के कार्यों में भी बाधा पड़ती है।

यह बात समाज में अधिक व्यापक रूप में सत्य है। अव्यवस्था तब ही उत्पन्न होती है जब समाज में कोई व्यक्ति अपनी योग्यता से अधिक अधिकार पा जाता है। यह उस कर्म में, जो वह करता है, अव्यवस्था उत्पन्न करता ही है, साथ ही वह अव्यवस्था समाज के दूसरे अंगों में भी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फैलती है और फिर एक रुग्ण शरीर की भाँति पूर्ण समाज अव्यवस्थित स्थिति में हो जाता है।

इस कारण समाज में विद्वानों की राय से ही सब कार्य चलने चाहिएँ। शरीर में वे ही बुद्धि का स्थानापन्न होते हैं।

समाज के कार्यों में यह एक महान् प्रश्न है कि योग्यता-अयोग्यता की परख कैसे हो और कौन करे ? मनुष्य में, कष्ट होने पर बुद्धि यह कार्य करती है। कारण यह कि शरीर एक ईकाई के रूप में कार्य करता है।

परन्तु समाज का एक ईकाई के रूप में कार्य करना किसी साँझी शक्ति के अधीन न होने के कारण कठिन हो जाता है। समाज की अवस्था में जहाँ विद्वान् को ढूंढना एक समस्या है वहाँ उस विद्वान् का कहा मनाने में भी कठिनाई उत्पन्न हो जाती है।

हमने अभी तक इस खण्ड की तीन कण्डिकाओं में यह बताने का यत्न किया है कि विश्व में एक ही नियम से कार्य होता हैं जगत् हो, मानव शरीर हो अथवा समाज हो। समाज एक कृत्रिम ईकाई होने के कारण इसकी व्यवस्था मनुष्य-शरीर से अधिक कठिन है। इससे यह पता तो चलता है कि समाज में भी जो जिस कार्य के व्यक्ति है वही वह कार्य करे और उस सीमा तक ही करे, जिस सीमा तक उसका सामर्थ्य तथा योग्यता है।

यदि समाज में ऐसा नहीं होगा तो अव्यवस्था वैसी ही होगी जैसी शरीर में होती है। तब दुःख की सृष्टि होती है।

इसका यह भी अभिप्राय है कि जहाँ दुःख है वहाँ उसका कारण अव्यवस्था है और वहाँ किसी अयोग्य के हाथ अधिकार चले गए हैं, यह स्वतः सिद्ध है।

यदि अयोग्य के अधिकार पा जाने से अव्यवस्था उत्पन्न हो सकती है तो अव्यवस्था का होना यही सिद्ध करता है कि कोई अयोग्य व्यक्ति अधिकार पा गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

: ७ :

व्यवस्था और अव्यवस्था—२

समाज में व्यवस्था निर्माण करने के लिए योग्य-अयोग्य और कुशल-अकुशल अधिकारी-अनाधिकारी में पहिचान अत्यावश्यक है। साथ ही यह जानना भी आवश्यक है कि किसी के अधिकार की सीमा कहाँ तक है।

जब यह पता चल गया कि मनुष्य-शरीर का कार्य वैसे ही चलता है जैसे समाज के कार्य चलते हैं तो मनुष्य शरीर की भाँति यह जानने की आवश्यकता भी रहती है कि समाज के मुख्य-मुख्य कार्य क्या हैं और वे किस प्रकार एवं किस-किस अंग से सम्पन्न होते हैं।

हमने बताया है कि शरीर में कार्य करने वाले अंग मुख्य रूप में दो श्रेणियों में बाँटे जा सकते हैं। एक आदेश देने वाला अंग और दूसरा आदेश निर्माण करने वाला अंग।

शरीर में आदेश देने वाला जो चेतन तत्त्व है, जीवात्मा कहा जाता है।

आत्म-तत्त्व अर्थात् जीवात्मा के लक्षण हम बता चुके हैं। वे हैं इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, प्रयत्न और चेतना।

पहले समाज में इस अंग के ही स्थानापन्न के विषय में विचार करेंगे। इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, प्रयत्न और चेतना का कर्म समाज में जो व्यक्ति अथवा समाज का विभाग करता हो वह समाज में जीवात्मा का प्रतीक कहा जा सकता है।

यह एक व्यक्ति हो अथवा एक विभाग हो, इसके विषय में पीछे विचार करेंगे। पहले तो यह देखना चाहिए कि पांच प्रकार के कार्य समाज में हैं क्या-क्या ? और उसका जीवात्मा कौन है ?

मनुष्य शरीर में कभी किसी वस्तु का अभाव रहता है, अथवा हो जाता है। अथवा दूसरों की उन्नत अवस्था देख कुछ अभाव अनुभव होता है। उस अभाव की पूर्ति की चाहना ही इच्छा होती है।

इच्छाएँ स्वभाविक होती हैं, परन्तु कल्पना से निर्मित की जाती हैं। कुछ की प्राप्ति सम्भव होती है, कुछ की असम्भव होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य शरीर में कुछ बातें अथवा परिस्थितियाँ पसन्द नहीं की जातीं। उनको दूर करने के विचार को द्वेष कहते हैं।

इच्छा और द्वेष शरीर की परिस्थितियों की प्रतिक्रियाएँ हैं। वे परिस्थितियाँ सुख और दु:ख कहाती हैं। सुख की स्थिति को प्राप्त करने की इच्छा होती है और दु:ख की स्थिति के विरोध को द्वेष कहते हैं।

इस पर भी सुख और दु:ख ये दो परिस्थितियाँ ऐसी हैं कि इनके लिए यत्न करना पड़ता है। सुख एक स्थिति है और सुख को प्राप्त करने का यत्न करना दूसरी बात है। कोई व्यक्ति सुख का ज्ञान रखता हुआ भी उसकी प्राप्ति की इच्छा एवं यत्न नहीं करता। इस कारण इच्छा और सुख का पृथक्-पृथक् वर्णन किया है। दोनों हैं भी भिन्न-भिन्न।

इसी प्रकार किसी को किसी अवस्था में दु:ख होता है, परन्तु वह उसको दूर करने का विचार नहीं करता। इस कारण दु:ख भी एक स्थिति है, परन्तु उसके विरोध का विचार एक दूसरी बात है और विरोध के लिए यत्न करना पृथक् है।

मूल में सुख और दु:ख ही हैं। इच्छा और द्वेष उनकी प्राप्ति अथवा निवारण के विचार हैं।

परन्तु विचार मात्र से कार्य नहीं चलता। उस विचार को कार्यान्वित करने के लिए प्रयत्न होना चाहिए। यह पाँचवीं बात है। ये पाँचों परस्पर सम्बन्धित और एक-दूसरे पर आधारित हैं। मूल में सुख और दु:ख ही हैं। सुख शरीर के अनुकूल स्थिति है। दु:ख शरीर के प्रतिकूल स्थिति है। सुख की प्राप्ति के विचार को इच्छा कहते हैं और दु:ख के निवारण के विचार को द्वेष कहते हैं और इन विचारों को पूर्ण करने के लिए किये गये कार्य को प्रयत्न कहते हैं।

अतएव सुख, इच्छा और प्रयत्न, दु:ख, द्वेष और प्रयत्न यह प्रक्रिया हो जाती है।

हमने बताया है कि यह प्रक्रिया चल भी सकती है अथवा नहीं भी चल सकती। अभिप्राय यह कि सुख की स्थिति का ज्ञान तो होता है, परन्तु उसकी प्राप्ति के लिए इच्छा नहीं भी हो सकती और प्राप्ति की इच्छा हो भी तो उसके लिए प्रयत्न नहीं भी किया जा सकता। इसी प्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुःख अनुभव होता है, परन्तु उसके विरोध की भावना होती भी है तो उनको दूर करने के लिए प्रयत्न नहीं होता।

इस प्रक्रिया को करना अथवा न करना ही चेतना कहाती है। यह स्वीकार किया जाता है कि इस कार्य को करने वाला शरीर में जीवात्मा नाम का एक तत्त्व है।

ऐसा ही एक तत्त्व समाज में रहना आवश्यक है। इसका नाम राजा, राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री, मंत्रीमण्डल अथवा संसद, कुछ भी रखें, यह समस्या नहीं है। समस्या यह है कि जो गुण, योग्यता और सामर्थ्य आत्म-तत्त्व में है, वैसा ही सामर्थ्य इत्यादि उस शासक में होना चाहिये तभी समाज के कार्य चलते हैं अन्यथा नहीं चल सकते।

शरीर में आदेश देने वाला आत्म-तत्त्व आदेश नहीं दे सकता, जब तक आदेश निर्माण करने वाले उसके सहायक न हों। जीवात्मा क्या आदेश दे, इसके निर्माण में सहायक होती हैं ज्ञानेन्द्रियां और मन। इनके गुण हम बता आये हैं। इस कारण समाज का आत्मा, राजा, राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, मन्त्रीमण्डल अथवा संसद, कुछ भी हो, यह आवश्यक है कि इसकी सहायता के लिये ज्ञानेन्द्रियां, मन और बुद्धि जैसे साधन होने चाहियें। इन साधनों में आंख, नाक, कान, जिह्वा और स्पर्श-इन्द्रियों के से गुण होने चाहियें। दूसरे शब्दों में समाज के जीवात्मा की सहायता के लिये सूचना विभाग और उस सूचना का विश्लेषण करने वाला विभाग होना चाहिये।

समाज में जीवात्मा का प्रतीक तो समाज का सर्वोच्च अधिकारी होता है। वह कौन हो और किस प्रकार उसका चुनाव हो, इस विषय में पुस्तक के अगले एक खण्ड में कहेंगे।

समाज की ज्ञानेन्द्रियां समाज का सूचना विभाग है। आज राजनीति में सूचना विभाग सरकारी सूचनाओं को प्रसारित करने वाला विभाग कहा जाता है। हमारा अभिप्राय ऐसे किसी विभाग से नहीं है। हमारा अभिप्राय ऐसे विभाग से है जो सब प्रकार का ज्ञान प्राप्त कर उसका विश्लेषण करे और समाज के सर्वोच्च अधिकारी के सम्मुख रखे। इसे वर्तमान युग में इण्टेलिजेंस विभाग कहा जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निःसंदेह समाज का यह विभाग अत्यावश्यक है। यह विभाग मनुष्य शरीर के आंख, नाक, कान, रसना और त्वचा के समान समाज के पूर्ण शरीर और समाज के बाहर के तत्त्वों का भी ज्ञान प्राप्त करने की योग्यता रखने वाला होना चाहिये।

इसकी योग्यता के विषय में कुछ बताने से पहले यह समझना आवश्यक है कि यह अपने प्राप्त ज्ञान की सूचना किसको दे। शरीर में तो ज्ञानेन्द्रियां अपना प्राप्त ज्ञान मन को देती हैं। यह भी कहा जाता है कि एक आभ्यन्तरिक इन्द्रिय होती है और ज्ञानेन्द्रियां अपना ज्ञान उसे देती हैं और फिर वह आभ्यन्तरिक इन्द्रिय अपना ज्ञान मन को देती है। अतः यह देखना होता है कि समाज में आभ्यन्तरिक इन्द्रिय अथवा मन कहां है।

समाज के कई विभाग हैं। उदाहरण के रूप में सेना विभाग है, व्यापार-मण्डल है, उद्योग धंधों का विभाग है, शिक्षा-विभाग है। फिर शिक्षा में भी कई उप-विभाग हैं। अतः समाज की भी आंखें, कान, नाक, रसना और त्वचा तथा आभ्यन्तरिक इन्द्रिय एवं मन आदि हैं।

यहाँ हम समाज का वर्णन कर रहे हैं, शासन का नहीं। शासन समाज का एक अंग है।

आज की व्यवस्था में समाज का वह विभाग जो आभ्यन्तरिक इन्द्रिय तथा मन का कार्य कर सके, दिखाई नहीं देता। परन्तु प्राचीन काल में परिवारों के तथा राज्यों के पुरोहित यही कार्य करते थे। आज के युग में देश का अध्यापक वर्ग एवं समाचारपत्र पुरोहित का दायित्व निभा सकते हैं।

हम समाज के दो विभाग करते हैं। एक विभाग है शासन और दूसरा विभाग है प्रजा।

शरीर की कर्मेन्द्रियों के समान समाज की कर्मेन्द्रियाँ हैं उसका शासन। इस कारण सूचना प्राप्त करना, शासन का काम नहीं हो सकता।

शरीर में कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों के स्थान तथा कार्य भिन्न-भिन्न हैं। इस कारण हमारा यह मत है कि शासन अर्थात् राज्य के हाथ में सूचना विभाग नहीं होना चाहिये। शासन सूचना प्राप्त कर अपना कार्य कर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकता है, परन्तु सूचना प्राप्त करने का कार्य शासन अर्थात् राज्य का नहीं हो सकता। यदि यह करेगा तो विभ्रम होने का भय रहेगा।

हमारा अभिप्राय यह है कि अध्यापकवर्ग, पुरोहित वर्ग, समाचार पत्र एवं लेखक वर्ग शासन से पृथक और सर्वथा स्वतंत्र होने चाहियें।

मन, ज्ञान-संग्रह का कार्य करता है और बुद्धि ज्ञान का विश्लेषण। ये दोनों कार्य शासन अर्थात् राज्य नहीं कर सकता। यदि करेगा तो वही विभ्रम उत्पन्न हो जायेगा जो मन और बुद्धि का कामनाओं से युक्त हो जाने पर होता है। कर्मेन्द्रियां कामनाओं के अधीन होती हैं। राज्य भी कामनाओं के अधीन हो जाता है। इस कारण मन और बुद्धि का कार्य राज्य के अधीन नहीं होना चाहिये।

इस प्रकार समाज के दो विभाग स्पष्ट हैं। एक वह जो समाज में ज्ञानेन्द्रियां, मन, बुद्धि और जीवात्मा जैसे कार्य करने वाला है और दूसरा वह जो समाज में कर्मेन्द्रियों के समान कार्य करता है।

प्रथम विभाग दूसरे के अधीन हो तो वही स्थिति हो जायेगी जो हाथ, पांव इत्यादि इन्द्रियों का मन तथा बुद्धि पर शासन प्राप्त कर पैदा हो सकती है।

सुव्यवस्थित समाज में यह आवश्यक है कि ज्ञान-अर्जन करने, ज्ञान का विश्लेषण करने और उस ज्ञान के आधार पर आज्ञा करने का कार्य उस विभाग से स्वतंत्र हो जो विभाग कार्य करने वाला है। प्रथम विभाग आदेश निर्माण करने वाला और आदेश देने वाला है। यह सदा कर्म करने वाले विभाग के ऊपर होगा।

: ८ :

व्यवस्था और अव्यवस्था—३

मनुष्य शरीर में ज्ञानेन्द्रियों, मन, बुद्धि, जीवात्मा तथा कर्मेन्द्रियों के अतिरिक्त भी तो कुछ अंश होता है। इसी प्रकार समाज में भी ज्ञान अर्जन करने वाले, ज्ञान का विश्लेषण करने वाले, समाज में आदेश देने वाले और कर्म करने वाले अंगों के अतिरिक्त भी कुछ अंग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होते हैं।

शरीर में जितने भी अंग मुख्य प्राण के अधीन कार्य करते हैं, अर्थात् हृदय, पाचक यंत्र, मल-मूत्र निकालने के यंत्र, रक्त-संचालन करने वाली नाड़ियों का जाल. ये सब ज्ञानेन्द्रियों, बुद्धि तथा जीवात्मा के अधीन नहीं होते।

यह हम बता चुके हैं कि शरीर के वे अंग जो महा प्राण से संचालित होते हैं, मनुष्य के सो जाने पर भी कार्य करते रहते हैं। स्पष्ट है कि उन पर नियंत्रण किसी अन्य का होता है। शरीर के भीतर स्थित जीवात्मा का नहीं होता।

हम मानते हैं कि समाज में भी बहुत बड़ा भाग होता है जो ज्ञान अर्जन करने अथवा ज्ञान के आधार पर आज्ञा देने वाले तत्त्व के अधीन नहीं होता। हम शरीर के इस अंग की तुलना समाज के व्यापारी वर्ग अथवा उद्योगधन्धों को चलाने वाले वर्ग के साथ कर सकते हैं। इनकी सृष्टि और कार्य-विधि पृथक् ही है। ये न तो शासन अर्थात् राज्य के अधीन कार्य करते हैं और न ही कर्मेन्द्रियों अर्थात् कर्म करने वाले समाज के अंगों के अधीन कार्य करते हैं।

यहां हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि व्यापार और उद्योग-धंधों में काम करने वाले कर्मचारी उद्योग और व्यापार का ही अंग हैं। इनका सम्बन्ध इन विभागों से अटूट है।

उद्योग-धंधों में और व्यापार में कार्य कर रहे कर्मचारी भी उद्योग-पतियों और व्यापारियों के साथ सम्बन्धित होने से ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों, मन, बुद्धि और जीवात्मा के अधीन नहीं होते अर्थात् समाज के ज्ञान अर्जन करने वाले तथा ज्ञान के आधार पर आदेश देने वाले विभाग के अधीन नहीं होते।

शरीर के कार्य की ओर ध्यान दें तो हम देखेंगे कि हृदय के पट्ठे जो दिन रात संकुचन और प्रसार करते हैं, वे मन, बुद्धि और जीवात्मा तथा आंख, नाक, कान, जिह्वा, त्वचा इत्यादि के अधीन नहीं होते। पाचक यन्त्र और मल-मूत्र निर्माण यन्त्र, पृथक् करने और निष्कासन करने के यंत्र भी शरीर के जीवात्मा के अधीन नहीं होते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस पर भी शरीर के मुख्य प्राण के अधीन कार्य करने वाले हृदय, रक्तवाहिनी नाड़ियों, आमाशय इत्यादि सब अंगों के पालन-पोषण का तथा रक्षा का दायित्व शरीर के हाथ, पांव इत्यादि कर्मेन्द्रियां, आंख, नाक, कान इत्यादि ज्ञानेन्द्रियां और आदेश देने वाले अंग मन, बुद्धि, तथा जीवात्मा का होता है। जीवात्मा के अधीन सभी अंग शरीर के इन भीतरी अंगों का पालन-पोषण और इनकी रक्षा करते हैं।

यही बात समाज में है। व्यापारी वर्ग, उद्योग धंधों में लीन वर्ग, और इनमें कार्य करने वाले कर्मचारियों का पालन-पोषण और रक्षा का कार्य तो ज्ञानार्जन करने वाला अंग और शासन का कार्य करने वाला अंग करते हैं। परन्तु उनका अपना काम इन अंगों के अधीन नहीं होता। समाज के ये अंग जो शासन के अधीन नहीं होते, परन्तु शासन से रक्षित होते हैं, यही समाज का मुख्य अंग हैं। इसे प्रजा वर्ग कहते हैं।

हम समझते हैं कि शरीर के कार्य की तुलना समाज से कार्य के बहुत ही ठीक बैठती है। इस पर भी समाज के इन अंगों के कार्यों की व्याख्या की आवश्यकता है। यह पुस्तक के अगले खण्डों में हम करेंगे।

प्रथम खण्ड का सारांश

शरीर के अंगों की तुलना समाज से की गयी है। शरीर में तीन प्रकार के अंग हैं। एक ज्ञान अर्जन करते हैं और उस अर्जित ज्ञान के आधार पर आदेश देते हैं। शरीर में ये अंग ज्ञानेन्द्रियां, मन, बुद्धि और जीवात्मा हैं। समाज में यह अंग है अध्यापक वर्ग, समाचार पत्र, लेखक वर्ग इत्यादि।

शरीर में एक दूसरी प्रकार के अंग भी हैं जो प्रथम प्रकार के अंगों की आज्ञा पर काम करते हैं। ये कर्मेन्द्रियां हैं। हाथ, पांव, वाक् शक्ति, गुदा और मूत्रेन्द्रियां। समाज का यह कार्य सरकारी कर्मचारी निभाते हैं।

शरीर में एक तीसरे प्रकार के अंग हैं। जैसे हृदय, रक्तवाहिनी नाड़ियां, भोजन-पाचन करने का यन्त्र, भोजन का सार शरीर में वितरण करने का यन्त्र, मल और मूत्र को मलाशय और मूत्राशय तक पहुंचाने का कार्य। ये कार्य शरीर के दूसरे अंगों के अधीन नहीं होते।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि शरीर के ये अंग पहले दोनों प्रकार के अंगों के अधीन नहीं होते। पहले दोनों भाग इन अंगों की सेवा तो करते हैं, परन्तु इन पर शासन नहीं करते।

भारतीय जीवन-मीमांसा में यह माना जाता है कि ये तीसरी प्रकार के अंग मुख्य प्राण के अधीन होते हैं और वह प्राण परमात्मा के अधीन होता है।

समाज में यह अंग है व्यापारी वर्ग तथा उद्योग-धन्धों का जो साधन-वितरण में संलग्न होते हैं। समाज में यह वर्ग वैश्य वर्ग कहाता है। यह वर्ग शासन के और शिक्षक वर्ण के अधीन नहीं होना चाहिये।

व्यापारी वर्ग और उद्योगपतियों की रक्षा और उनका पालन शासन तथा शासन के कर्मचारियों को करना चाहिए, परन्तु इनको उन पर शासन नहीं करना चाहिए।

इस तीसरे वर्ग के अपने नियम हैं। वे नियम ईश्वरीय ऋतों के अधीन चलते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीय खण्ड

: १ :

समाज

मनुष्य प्राणी-समूह को समाज कहते हैं। प्राणी तो मनुष्यों के अतिरिक्त भी हैं। परन्तु उनके समूह को समाज नहीं कहते। संस्कृत भाषा में उनके समूह को समाज कहा जाता है। रेवड़ उस समूह का उचित नाम है। यद्यपि मच्छर, कीड़े-मकोड़े इत्यादि के समूह को रेवड़ नहीं कहते, परन्तु समाज के अर्थों को स्पष्ट करने के लिये मनुष्येतर जन्तुओं के समूह को रेवड़ की श्रेणी में समझ लिया जाये तो अभिप्राय अधिक स्पष्ट हो जायेगा।

जो अन्तर मनुष्य समाज में और भेड़ों के रेवड़ में है, वही अन्तर एक मनुष्य और किसी भी इतर् जीव-जन्तु में है।

भेड़ों के स्वभाव को प्रकट करने के लिये एक शब्द का आविष्कार किया गया है—भेड़ियाधसान। इसका अर्थ है एक के पीछे सब का चलना।

मनुष्य समाज इससे भिन्न है। यह भेड़ियाधसान को गुण नहीं मानता। मनुष्य में कुछ गुण हैं जो भेड़ों में नहीं हैं जिनसे यह भेड़ों से भिन्न माना जाता है और इसके समूह को रेवड़ नहीं कहा जाता। समाज और रेवड़ में यही अन्तर है जो मनुष्य और इतर् जीव में है। इतर् जीव-जन्तु का प्रतीक भेड़ लिया जा सकता है।

सब भेड़ें एक भेड़ के पीछे चलती हैं और यही भेड़ियाधसान है। परन्तु मनुष्यों में यह भेड़चाल नहीं होती। यह इस कारण कि मनुष्य में बुद्धि नाम का एक यंत्र है जो अत्यन्त चंचल और सदा नवीन पथ का अनुसरण करने में आनन्द अनुभव करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह बात उस जनसमूह में बहुत स्पष्ट दिखाई देगी जिसमें मनुष्यत्व सबसे अधिक है। हम वैदिक समाज को सबसे अधिक मनुष्यत्व अर्थात् बौद्धिक गुणों से युक्त मानते हैं। यदि इस बात को छोड़ भी दिया जाये कि भूमण्डल की सब जातियाँ एक ही मनुष्य-समाज की शाखाएँ हैं और भारतीय, चीनी, जापानी इत्यादि शाखाएँ भिन्न-भिन्न स्थानों पर उत्पन्न हुईं तथा वहाँ के मत-मतान्तरों को ही मानने वाली हैं तो भी भारत में बसे हुए साठ करोड़ हिन्दू कितने प्रकार के मतों को मानते हैं, कितने विभिन्न आचार-विचार का पालन करते हैं, इससे ही यह पता चल सकता है कि वैदिक समाज कितना उदार रहा है और व्यापक भी है जो इन सब मत-मतान्तरों को वेद मतान्तर्गत ही मानता है।

भारत के सब मत-मतान्तर वेद मत की ही शाखाएँ हैं और ये अगणित हैं। यह इस कारण है कि वेद मत में बुद्धि का अनुसरण करने का आदेश है। वेदमत का एक अनुयायी ही बौद्ध, वैष्णव देवी-भक्त, रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य अथवा अम्बिकाचार्य के अनुयाई, कबीरपंथी इत्यादि सबको वैदिक मत के अन्तर्गत मानता है। यद्यपि ये सब अपने को एक दूसरे से भिन्न समझते हैं। इनमें बहुत से ऐसे भी हैं जो अपने मूल अर्थात् वेद मत से भी इन्कार करते हैं, इस पर भी वेदानुयायी इनको अपना ही स्वीकार करते हैं।

वैदिक मत बुद्धिवादी है और स्वीकार करता है कि बुद्धि चंचल है, किंचिन्मात्र बाहरी कारणों से भिन्न दिखाई देने लगती है।

यद्यपि ये मत-मतान्तर आज भिन्न हो गये हैं, इस पर भी इन मत-मतान्तरों में जो मनुष्य बुद्धिशील हैं, वे लौटकर वैदिक मत की विशाल छाया के नीचे आकर सुख-लाभ करने की इच्छा रखते हैं।

कठिनाई यह है कि इन विभिन्न मतों के ठेकेदार बुद्धि के प्रयोग को वर्जित करते रहते हैं। जो लोग इन ठेकेदारों के कथन कि धार्मिक समस्याओं में बुद्धि का प्रयोग वर्जित है, मानते हैं, वे ही वापस मूल वेद मत की ओर नहीं आते। जहाँ-जहाँ भी बुद्धि के प्रयोग की छूट होगी, सब मत-मतान्तर घूम-घुमाव कर वैदिक मत की ओर ही आयेंगे।

मत-मतान्तरों में निहित स्वार्थ सिद्ध करने वाले लोग बुद्धि के प्रयोग

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को वर्जित करते हैं। वे श्रद्धा, भक्ति और निष्ठा पर बल देते हैं। गुरु-पैगम्बर इत्यादि को वे पहुँचा हुआ व्यक्ति मान अपने सीमित विचार-क्षेत्र में ही रहना चाहते हैं। परिणामस्वरूप भारत में मत-मतान्तरों के एक होने में वे बाधक बन जाते हैं।

हमारा मत है कि कुछ भी हो, कितनी भी बाधाएँ क्यों न हों, मनुष्य का मनुष्यत्व जब भी उभरेगा, वह बुद्धिवाद की ओर आयेगा और बुद्धि की महिमा वर्णन करता हुआ पुनः मूल वेदमत को स्वीकार करेगा।

मानव समाज का कल्याण बुद्धिवाद में है और वेद बुद्धिवाद की ओर मुख किये हुए हैं।

वेद किसी व्यक्ति-विशेष को राहबर अर्थात् पथ-प्रदर्शक नहीं मानता! यह ही एक मात्र मत है जिसमें बुद्धि की याचना करने को कहा जाता है। वेद मतानुयायियों का मूल मंत्र है—

ओ३म् भूर्भुवः स्वः तत् सवितुर्वरेण्यं।
भर्गोदेवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्॥

यजुः० ३६-३

इस मंत्र में कहा है कि परमात्मा 'धियो यो नः प्रचोदयात्'—हमारी बुद्धियों को प्रेरणा दे।

यह है वेद मत का गुरु मंत्र। यह भाव किसी अन्य मत में प्रकट नहीं किया जाता इसी कारण हम कहते हैं कि वेद मत ही बुद्धिवाद है और बुद्धि ही मनुष्य की विशेषता है।

बुद्धि क्या कहे, यह भी बुद्धि पर ही छोड़ा जाता है।

इसका परिणाम यह होता है कि मनुष्य भूल करता हुआ भी ठीक दिशा की खोज में रहता है और अन्त में सन्मार्ग पर आ ही जाता है।

यही कारण है कि जो लोग मानवता के इस गुण को कि बुद्धि पथ-प्रदर्शक है, नहीं छोड़ते, वे भूल करते हुए भी सन्मार्ग की ओर ही चलते हैं, और यही कारण है कि बुद्धि के आश्रय पर चलने वाले अन्त में मानव धर्म अर्थात् वैदिक धर्म की ओर आ जाते हैं।

हमने कहा है कि समाज मनुष्यों का, दूसरे शब्दों में बुद्धिजीवी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राणियों की होती है। और जहाँ श्रद्धा, भक्ति इत्यादि वाग्जाल से बुद्धि को कुण्ठित किया जाता हो, वहाँ की समाज मनुष्यों की नहीं कही जा सकती। वह पशुओं का रेवड़ अथवा बाड़ा रह जाता है। इसे संस्कृत में समज कहते हैं। अतएव जहाँ-जहाँ समाज का वर्णन इस पुस्तक में आया है, वहाँ मननशील मनुष्यों की समाज का ही समझना चाहिए न कि भड़ियाधसान वाले जीवों के समूह का।

ऐसी समाज में बसने वाले प्राणी संसार में कैसे रहें, यही इस पुस्तक का विषय है। आजकल बहुमत की बहुत धूम है। इसलिये यह विचारणीय हो गया है कि क्या बुद्धिवाद और बहुमत पर्यायवाची शब्द हैं अथवा परस्पर विरोधी हैं।

जो बात हम यहाँ बताना चाहते हैं वह यह है कि मनुष्य बुद्धिशील प्राणी है। बुद्धि चंचल है। इस पर भी बुद्धि का प्रयोग करने वाले मनुष्य ठोकर खाते हुए भी सन्मार्ग पर आ जाते हैं और जो इस भय से कि चंचल बुद्धि धोखा देगी, इसका प्रयोग छोड़कर केवल भेड़ियाधसान वाली बात करते हैं वे समाज के अन्तर्गत रहते हुए भी भेड़ चाल करते ही माने जायेंगे।

: २ :

समाज की व्याख्या

एक समाज का स्वरूप मानव-शरीर की नकल पर है, यह हम प्रथम खण्ड में बता चुके हैं। समाज के दो अंग होते हैं। एक आदेश निर्माण करने वाला और आदेश देने वाला अंग, दूसरा आदेश पालन करने वाला अंग।

एक तीसरा अंग भी है जो समाज का अंग तो है, परन्तु आदेश देने वाले अथवा पालन करने वाले अंगों के अधीन न रहता हुआ भी समाज का ही अंग है। वह समाज की सेवा करता है और समाज के आदेश देने वाले अंग तथा आदेश का पालन करने वाले अंग इस तीसरे अंग की रक्षा और पालन करते हैं।

यह सब हम ऊपर बता चुके हैं। यहाँ समाज का एक अन्य ढंग से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्णन करना चाहते हैं। इससे व्यक्ति और समाज का सम्बन्ध स्पष्ट हो जायेगा।

समाज व्यक्तियों के समूह को कहते हैं। समूह तो भेड़ों का भी है। हमने बताया है, यह मानव समाज का स्वरूप नहीं है।

परन्तु यदि सब को स्वेच्छा से चलने-फिरने की स्वीकृति हो तो सब भिन्न-भिन्न मार्गों पर चल पड़ेंगे। जिधर जिसका मुख होगा, उधर ही वह चल पड़ेगा और जहाँ तक जो जाना चाहेगा, चलेगा और फिर बैठ जायेगा।

परिणाम यह होगा कि समाज रहेगा ही नहीं और व्यक्ति ही रह जायेंगे।

इस कारण प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या संगठन समाज की आवश्यकता नहीं है?

मनुष्य-बुद्धि ने ही समाज की कल्पना की है।

महाभारत और पुराणों में एक कथा आती है। वहाँ इसे इतिहास कहा है। वह यह कि आदि सृष्टि में न कोई राजा था, न राज-नियम। सब मनुष्य स्वयं ही अपना-अपना कर्त्तव्य और अधिकार देखकर व्यवहार करते थे।

जनसंख्या बहुत कम थी। वन के फल-फूल प्रचुर मात्रा में थे। धीरे-धीरे आबादी बढ़ने लगी और खाने-पहरने के साधन कम होने लगे। लोग उत्पत्ति स्थान को छोड़ नये-नये स्थानों पर जाकर बसने लगे।

अभाव के कारण अथवा कामनाओं के बढ़ जाने के कारण लोगों की आवश्यकतायें और कामनायें बढ़ गईं। वे आवश्यकताओं और कामनाओं को पूर्ण करने के लिये कर्त्तव्य और अधिकार को भूल गये और जो उचित नहीं, वह करने लगे।

जो बलशाली थे, उन्होंने गुट्ट बना लिये और मिलकर अपनी आवश्यकताओं को पूर्ण करने लगे। अपने और पराये में भेद नहीं रहा। जिसकी लाठी, उसकी भैंस हो गयी।

इस पर बुद्धिशील लोगों ने एक स्थान पर बैठ कर विचार किया कि क्या किया जायें। इन विचार करने वालों का नेता ब्रह्मा था। उसने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सब लोगों की जीवन-चर्या निश्चित की और इसके लिये उसने स्मृति की रचना की ।

इस स्मृति में नियम-उपनियम बनाये गये जिनसे अपना क्या है और पराया क्या है, इसका निश्चय हो सके । और फिर कोई एक संगठन कल्पित किया गया, जिससे लूट मचाने वालों का विरोध किया जा सके अथवा किसी दुर्बल के अधिकार पर छापा डालने वाले बलशाली को निःशेष किया जा सके । इस संगठन का नाम राज्य रखा । वे लोग जो उस स्मृति-शास्त्र को स्वीकार करते थे, समाज कहाये और जो समाज की सुरक्षा का प्रबन्ध किया गया, वह राज्य कहाया । समाज ने ही राज्य का निर्माण किया ।

स्मृति-शास्त्र मानव-कृत होते हैं । ये कुछ एक अधिकारों के आधार पर बनाये जाते हैं । इन अधिकारों में कुछ अधिकार आधारभूत होते हैं और कुछ सामयिक कठिनाई को पार करने के लिये होते हैं ।

मानव-समूह तब तक बना रहता है, जब तक उन आधार-भूत अधिकारों की रक्षा होती रहती है और वे आधार-भूत अधिकार व्यक्ति के भोग के लिये उपलब्ध होते रहते हैं ।

उदाहरण से बात स्पष्ट हो जायेगी । एक व्यक्ति किसी भूमि खण्ड पर अपना मकान अपने ही प्रयत्न से खड़ा करता है । भूमि किसी की निजी सम्पत्ति नहीं होती । यह ईश्वर की देन है । और मकान बनाया है एक व्यक्ति ने अपने प्रयत्न से । इस कारण वह मनुष्य उस मकान का स्वामी कहाता है और उस मकान का अपने हित में प्रयोग करना उसका अधिकार है ।

कोई समाज उससे वह मकान बिना उसकी स्वीकृति के नहीं ले सकती । यह उस व्यक्ति का अपना अधिकार है । समाज़ इसे छीन लेगी तो समाज टूट जायेगी । तब मनुष्य उस समाज को छोड़कर उससे बाहर होने आरम्भ हो जायेंगे ।

इसी प्रकार का एक अन्य उदाहरण लिया जा सकता है । एक युवक एक युवती से पत्नी का सम्बन्ध बना लेता है । सम्बन्ध दोनों स्वेच्छा से बनाते हैं और इस सम्बन्ध से वे सन्तुष्ट तथा प्रसन्न हैं । उस सम्बन्ध को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भंग करने का अधिकार समाज को नहीं है। जब तक दोनों चाहें परस्पर सम्बन्ध रख सकते हैं।

इस अवस्था में यदि एक पक्ष सम्बन्ध तोड़ना चाहे और दूसरा न तोड़ना चाहे तो समाज दोनों में सम्बन्ध तोड़ने के कुछ नियम बना देता है।

सम्बन्ध बनने को विवाह कहते हैं और सम्बन्ध तोड़ने को तलाक कहते हैं। समाज इसके नियम बनाता है। इन नियमों का पालन करते हुए ही सम्बन्ध रह सकता है अथवा सम्बन्ध टूट सकता है। समाज केवल व्यक्तियों की सुख-सुविधा के लिये ही नियम बनाता है।

व्यक्ति के अधिकार इस विषय में समाज के नियमों के अन्तर्गत ही हैं। वे नियम उस अवस्था में ही कार्य में आते हैं जब पति-पत्नी में झगड़ा होता है।

एक अन्य उदाहरण ले सकते हैं। एक व्यक्ति भूमि खोदकर उसमें से कच्चा लोहा निकालाता है। उस कच्चे लोहे को भट्ठी में जला कर फौलाद बनाकर उससे व्यवहार के पदार्थ बनाता है। उदाहरण के रूप में वह उससे चिमटे, छुरियाँ, चाकू अथवा अन्य प्रयोग के समान बनाता है।

कोई दूसरा उससे वह समान माँगता है। वह व्यक्ति उसका मूल्य माँगता है। क्या मूल्य ले? इस पर झगड़ा हो जाता है। तब समाज उसमें हस्ताक्षेप करता है।

लोहा निकालने वाले और फौलाद बनाने वाले तथा उससे व्यवहार योग्य औज़ार बनाने वाले इत्यादि किस प्रकार उन वस्तुओं का प्रयोग करें इसकी व्यवस्था अर्थात् नियम समाज बनाता है। उन नियमों में समाज यह निश्चय करता है कि औज़ार तैयार करने वाले का क़ितना अधिकार है और औज़ारों के प्रयोग करने वाला उसका क्या प्रतिकार दे?

यह सब है स्मृति। स्मृति का अभिप्राय है कि व्यक्ति के अधिकारों को सुरक्षित करना। वस्तु निर्माण करने वाले के अधिकार को भी और वस्तु का प्रयोग करने वाले के अधिकार को भी।

जहाँ निर्माता और भोक्ता के अधिकारों में विरोध प्रकट हो, वहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाज निर्णय देता है ।

यह निर्णय किस आधार पर हो ? यह विचारणीय है । इसके लिये स्मृतिकारों ने नियम-उपनियम बनाये हैं ।

समाज का निर्णय कोई मानेगा अथवा नहीं, इसके विषय में भी स्मृतिकारों ने नियम बनाए हैं । इन सब का हम आगे चल कर बर्णन करेंगे ।

यहाँ हम यह बता रहे हैं कि स्मृति के नियम बुद्धि से विचारित ही होने चाहियें अन्यथा अविचारित नियम जब प्रयोग किये जायेंगे तो विद्रोह हो जायेगा और समाज भंग हो जायेगा ।

यह भी सम्भव है कि समाज के नियम बुद्धियुक्त हों, परन्तु समाज में ऐसे तत्त्व उत्पन्न हो जायें जो बुद्धियुक्त नियमों को अपने अनूकूल न देखकर उनकी अवहेलना करना चाहें । तब समाज को अपने बुद्धियुक्त नियमों को चलाने के लिये दण्ड की आवश्यकत होगी है । यह दण्ड ही राज्य है ।

हमारे कहने का अभिप्राय यह है कि मनुष्य-मनुष्य का परस्पर किसी प्रकार का भी सम्बन्ध जब तक दोनों की सहमति से चलता है, तब तक समाज को उन सम्बन्धों में हस्ताक्षेप करने की आवश्यकता नहीं होती । किसी भी व्यवहार में सम्बन्धित मनुष्यों में जब तक सहमति रहती है, तब तक समाज के, दूसरे शब्दों में स्मृति-शास्त्र के, अभिप्राय यह कि कानून के हस्ताक्षेप की आवश्यकता नहीं रहती । यदि तब भी समाज अथवा कोई कानून हस्ताक्षेप करे तो यह समाज के विरुद्ध दोष उत्पन्न करेगा, जिसका परिणाम होगा विद्रोह ।

हाँ, जहाँ व्यक्ति-व्यक्ति के सम्बन्ध में सहमति न हो, वहाँ समाज इस बात की स्वीकृति नहीं देगा कि बलशाली दुर्बल से कोई बात बल-पूर्वक मनवाये । ऐसी अवस्था में समाज हस्ताक्षेप करता है और यदि कोई समाज के हस्ताक्षेप को इस अवस्था में भी पसन्द नहीं करता तो समाज बल का प्रयोग कर बलशाली को सन्मार्ग दिखाता है ।

हमने बताया है कि यह राज्य है । राज्य की कोई स्मृति (कानून की पुस्तक) होनी चाहिए और राज्य उस कानून को मनवाने के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिये शक्ति-सम्पन्न होना चाहिए।

संक्षेप में राज्य समाज में व्यवस्था बनाये रखने का एक साधन है।

महाभारत में जो यह कहा है कि आदिकाल में न राजा हुए, न राज्य-नियम और सब लोग स्वेच्छा से धर्मानुसार व्यवहार रखते थे, इसका यही अभिप्राय है कि उस काल में लोग स्वेच्छा से एक दूसरे के अधिकार की प्रतिष्ठा करते थे।

राज्य की आवश्यकता उस समय पड़ी, जब कुछ लोग दूसरे के अधिकारों को आत्मसात करने लगे।

: ३ :

राज्य की व्याख्या

समाज राज्य का निर्माण करता है, यह हम ऊपर बता चुके हैं। इसके निर्माण की कब आवश्यकता पड़ती है? यह भी हमने बताया है। परन्तु राज्य बिना स्मृति-शास्त्र के कार्य नहीं कर सकता जब कि समाज राज्य के बिना कार्य कर सकता है।

अत: व्यक्ति, व्यक्ति से समाज, समाज से राज्य और राज्य से राज्य-नियम—यह है प्रक्रिया।

समाज के बिना व्यक्ति रह सकता है। जब यह अकेला रहे अथवा जब वह दूसरों के साथ रहे तो दूसरों के अधिकारों का आदर करे ऐसी अवस्था में व्यक्ति बिना समाज के अर्थात्, समाज द्वारा बिना हस्ताक्षेप के रह सकता है।

इसी प्रकार समाज राज्य के बिना रह सकता है, जब समाज के घटक या तो एक दूसरे के अधिकारों का आदर करते हुए रहें अथवा जब कभी अधिकारों में विवाद उत्पन्न हो जाये तो समाज द्वारा किये विवाद के निर्णय को मान लें।

राज्य की आवश्यकता तब ही पड़ती है जब व्यक्ति परस्पर किसी भी विषय पर विवाद उत्पन्न होने पर समाज के निर्णय को न मानें। राज्य की आवश्यकता विवादों पर हुए निर्णय को प्रतिष्ठित करने के लिये होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतएव राज्य के बिना समाज रह सकता है। जब समाज की व्यवस्था बुद्धिगम्य हो और समाज के घटक बुद्धिशील हों तथा समझें कि उनके अधिकारों की सीमा क्या है। राज्य तो अन्तिम पग है व्यवस्था स्थापित करने का।

यह ठीक है कि आज के काल में, जब कि बुद्धि गौण मानी जाने लगी है, सब अपने-अपने में ज्ञानवान् बन बैठे हैं, मनुष्य के कर्म कामनाओं के अधीन हो गये हैं और उन पर बुद्धि का नियंत्रण नहीं रहा। साथ ही बुद्धियुक्त व्यवहार का भी कोई मापदण्ड नहीं रहा, इसी कारण राज्य एक अनिवार्य संस्था बन गयी है। परन्तु यह नहीं कि किसी मामले में, अथवा किसी व्यक्ति के विषय में राज्य के बिना काम चल ही नहीं सकता।

यह इस कारण कि राज्य समाज की विशेष स्थिति की उपज है, समाज का एक अनिवार्य अंग नहीं है।

राज्य अर्थात् दण्ड की आवश्यकता न रहे, अथवा रहे तो अति न्यूनतम ही, ऐसी स्थिति किसी भी समाज में उत्पन्न हो सकती है। यह असम्भव नहीं। इसमें व्यक्तियों का अथवा अधिक संख्या में व्यक्तियों का व्यवहार बुद्धिगत होने की शर्त है।

जहाँ-जहाँ, जिस समाज में भी राज्य का नियंत्रण सर्वव्यापक और अति कठोर है, वहां यह मानना ही पड़ेगा कि समाज के अधिकांश घटकों का व्यवहार बुद्धिशील नहीं। तब ही राज्य और कठोर राज्य की आवश्यकता हुई है।

विचार उपस्थित होता है कि इसकी आवश्यकता क्या है कि बुद्धि-युक्त व्यवहार रखा जाये? यह राज्य पर छोड़ दिया जाये कि वह जन-जन को नियंत्रण में रखे। ऐसा कई समाजवादी देशों में है।

यह एक अस्वभाविक स्थिति है जो एक अस्वभाविक अवस्था को स्वभाविक बनाने के लिए निर्माण की गई है। इस कारण यह सुखद नहीं हो सकती।

राज्य एक मानव-निर्मित विधि-विधान है। यह सदा और सर्वत्र ठीक होना सम्भव नहीं। इस अस्वाभाविक स्थिति को दूर करने अथवा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्यूनातिन्यून करने में ही अधिकाधिक सुख की सृष्टि हो सकती है।

उदाहरण के लिए कोई भी विवाद लिया जा सकता है। हम यहाँ एक उदाहरण लेंगे जिसमें एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति से विवाद हो तथा जिसमें राज्य अथवा पूर्ण समाज असम्बन्धित न हो।

एक किरायेदार है। वह नई दिल्ली के एक मकान में सन् १९४० से अथवा उससे भी पहले से किरायेदार हैं। तब उसके मकान का किराया पचास रुपये महीना था। नई दिल्ली में किराए बहुत बढ़ गये हैं और मकानों के स्वामी पचास रुपये के मकान का किराया दो सहस्र माँगने लग गए हैं। यह ठीक है कि रुपये का मूल्य बहुत कम हो गया है। सन् १९४० का एक रुपया सन् १९७९ के दस पैसे के मूल्य का रह गया है, परन्तु मालिक मकान तो इसके अनुपात से बहुत अधिक मकान का किराया माँगने लगे हैं। जब वह पचास रुपये के मकान का किराया दो सहस्र रुपये माँगता है तो यह चालीस गुना अधिक है। यह अन्याय है। किरायेदार इसे पसन्द नहीं करता। इस कारण राज्य को हस्ताक्षेप करना पड़ा है।

परन्तु राज्य का नियम बुद्धिगम्य ही होगा, इसकी कोई गारण्टी नहीं। यह है भी नहीं। कानून कुछ ऐसे हैं कि सन् १९४० के किराये से किराया दुगना हो सकता है। परन्तु रुपये का मूल्य तो इस अनुपात से बहुत कम है। इस कारण दिल्ली में ही अगणित मुकद्दमे चल रहे हैं और कई अवस्थाओं में तो वर्षों से न्यायालयों में लुढ़के पड़े हैं।

राज्य का नियम एक शुष्क लकड़ी की भाँति है जो बदल रही स्थिति में लचक नहीं रखती। राज्य लचकदार कानून नहीं बना सकता। राज्य के सब नियम सूखी लकड़ी के समान होते हैं जो बदलते जमाने में अपने को स्वतः अनुकूल नहीं बना सकते।

यह क्यों? इसकी व्याख्या हम राज्य की विवेचना करते समय करेंगे। इस पर भी इतना तो यहाँ कहा ही जा सकता है कि कोई भी राज्य सदा और सर्वत्र के लिए व्यवस्था देने के अयोग्य है। यही कारण है कि राज्य का कोई भी कानून स्थाई नहीं। संसद को सदा अपने पहले निर्णयों को बदलने के लिए नये-नये कानून बनाने की स्वीकृति है। कितने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही कानून बने हैं, इस पर भी नए कानून बनाने बंद नहीं किए जाते और यह किये भी नहीं जा सकते। राज्य के विधि-विधान में, विशेषतया वर्तमान काल में, स्थाई कानून बनाने सम्भव भी नहीं।

यह नहीं कि मनुष्य बदल रहे हैं। मनुष्य तो आदि सृष्टि से वही स्वभाव रखता चला आया है। यहाँ तो काल की गति बदल रही है और उस बदलते काल की गति को मनुष्य के अनुकूल होने की स्वीकृति राज्य-नियम नहीं देते।

एक उदाहरण लिया जा सकता है। एक कर्मचारी का वेतन है। वेतन में वृद्धि की मांग सर्वत्र बनी दिखाई देती है। इस पर भी राज्य का नियंत्रण है। यह नियंत्रण सूखी लकड़ी के समान लचकदार नहीं। वेतन का सम्बन्ध भी रुपये के मूल्य से सम्बन्धित है। परन्तु उससे सम्बन्ध न बना कर नये-नये नियम बनाये जाते हैं और प्रति वर्ष वे टूट जाते हैं। इसी कारण हड़तालें तथा लॉक-आऊट व्यापक रूप में हो रहे हैं।

इस सब में हमारा कहना है कि व्यक्ति जब अबुद्ध व्यवहार करने लगते हैं तो समाज के हस्ताक्षेप की आवश्यकता होती है। समाज अर्थात् बहुसंख्य घटक जब अबुद्ध व्यवहार करने लगता है तो राज्य की आवश्यकता होती है। जब राज्य अबुद्ध व्यवहार स्वीकार करता है अथवा करने पर विवश होता है तो घोर विपत्ति का समय आ जाता है और तब क्रान्ति होती है।

बुद्धि के विषय में हम बता चुके हैं। परन्तु प्रश्न यह है कि बुद्धि जब चंचल है अर्थात् अस्थिर है तो फिर अव्यवस्था, विपत्ति और दुराचार अनिवार्य नहीं है क्या ?

हम समझते हैं कि यह इस प्रकार नहीं। बुद्धि स्थिर करने के उपाय हैं और स्थिर बुद्धि के घटक श्रेष्ठ समाज की कल्पना कर सकते हैं। और तब राज्य की आवश्यकता एक अपवाद हो जायेगी, नियम नहीं।

बुद्धि स्थिर करने के उपाय वर्णन किये गये हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

: ४ :

स्थिर बुद्धि वालों में राज्य

बुद्धि अस्थिर कब होती है ? इस विषय में भगवद्‌गीता में बहुत सुन्दर ढंग से कहा है। 'विषयों का सदा चिन्तन करने वालों का विषयों से संग बढ़ता है। इससे विषयों की कामना बढ़ती है। सब कामनाओं की तृप्ति नहीं हो सकती। इससे क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध से अविवेक उत्पन्न होता है। अविवेक से स्मृति हीन होती है। और स्मृति के नाश होने से बुद्धि नष्ट होती है। इससे सर्वस्व नष्ट हो जाता है।'[1]

अतः बुद्धि को स्थिर करने का उपाय यह है कि मनुष्य को विषयों का चिन्तन छोड़ना चाहिए। विषय कई प्रकार के हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। उनके प्रयोग लक्ष्य को विषय कहते हैं। इन्द्रियाँ अपना कार्य करेंगी ही। उनका प्रयोग न करना, उनको रखते हुए असम्भव है और यहाँ गीता में भी उनके प्रयोग को मना नहीं किया। यह कहा है कि उनके विषयों का चिन्तन करना, दिन-रात उनका ही स्मरण करते रहना और उनको प्राप्त करने की कामना करते रहना ही दोषपूर्ण है।

संक्षेप में कामना-रहित व्यवहार ही बुद्धि को स्थिर करने का उपाय है।

कामना-रहित व्यवहार मन की एक स्थिति है, जिसको प्राप्त करने के लिए कर्म का उद्देश्य बदलने की आवश्यकता है।

जैसे ज्ञानेन्द्रियों को कार्य से रोका नहीं जा सकता, वैसे ही कर्मेन्द्रियों को भी कर्म करने से रोका नहीं जा सकता। कर्मेन्द्रियों का प्रमुख मन, एक क्षण के लिए भी कर्महीन नहीं रह सकता। इस कारण यदि मन की

---

[1] ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते॥
क्रोधाद्भवति संमोहः संमोहात्स्मृतिविभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥

भ० गीता २-६२,६३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थिति ऐसी हो जाये कि कर्मफल की इच्छा के बिना कर्म करने का स्वभाव डाल ले तो कामना के विषय निःशेष हो जाएँगे।

बुद्धियुक्त कर्म तो हो, परन्तु स्वहित के लिए न हो। पूर्ण समाज के हित में विचारित कर्म और वह भी फल की इच्छा छोड़कर किया जाये तो वह कर्म कामना-रहित माना जाता है।

ऐसे कर्म को निष्काम-भाव से किया यज्ञ कर्म कहा गया है।

यह हुई मन की स्थिति। मनुष्य कार्य करे, विचार करके, यह विचार कर कि पूर्ण समाज के हित में मुझे कर्म करना है। समाज में वह स्वयं भी है। इस कारण समाज के हित का अर्थ अपना हित भी होता है। इस प्रकार कर्म करता हुआ, सफलता अथवा असफलता में मन की स्थिति राग-रहित हो, न सफल होने पर प्रसन्नता हो और न असफलता पर शोक की स्थिति, ऐसी स्थिति में बुद्धि स्थिर हो जाती है।

तब मनुष्य के कर्म मनुष्य की उन्नति में साधन बन जाते हैं।

ऐसी मनःस्थिति कैसे प्राप्त की जा सकती है? इसमें सर्वप्रथम साधन है शिक्षा। शिक्षा ऐसी हो कि बुद्धि से विचार कर कर्म करने का अभ्यास हो जाए और बुद्धि में समाज की कल्पना ऐसी बैठे कि उसके घटकों के कर्म यज्ञरूप हों अर्थात् सब के साँझे हित में हों।

यज्ञ का अर्थ ही है कर्म, जो समाज के हित में हो। सामाजिक हितों से अभिप्राय है मनुष्य अपने कर्म में समाज-हित को उद्देश्य मान ले।

इसमें उदाहरण लिया जा सकता है। एक निर्देशक चल-चित्र बनाता है। चल-चित्र समाज के किसी व्यवहार के प्रदर्शन के लिए होता है। समाज के व्यवहार कामनाओं को उत्तेजित करने वाले भी होते हैं और कामनाओं को शान्त करने वाले भी। कामनाओं को उत्तेजित करने में समाज का अहित होगा। जो चलचित्र कामनाओं को उत्तेजित करने वाला होगा, वह भले ही अधिक लाभ देने वाला हो, परन्तु उसका निर्माण यज्ञरूप नहीं हो सकता। वह बुद्धियुक्त भी नहीं। वह बुद्धि भ्रष्ट करने वाला है। यह निर्माताओं की और दर्शकों की, दोनों की बुद्धि का नाश करने वाला है।

इसी प्रकार एक अन्य उदाहरण लिया जा सकता है। एक हकीम है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह दिन-रात यह विज्ञापन देता रहता है—'विवाहित आनन्द प्राप्त करने के लिए मुझ से राय करो।' उसकी औषधि क्या लाभ करती है अथवा क्या नहीं करती, यह विचारणीय नहीं। विचारणीय यह है कि उसका प्रत्येक विज्ञापन सहस्रों के मन में पढ़ते समय विवाहित आनन्द का स्मरण कराता रहता है। विषयों का चिन्तन कराने में वह सहायक होता है और प्रायः विज्ञापन पढ़ने वालों के मन में वही प्रक्रिया उत्पन्न कर देता है, जिससे विषयों का चिन्तन होता है।

एक अन्य उदाहरण लिया जा सकता है। एक बसाती का दुकान-दार अपनी दुकान पर दो सौ प्रकार का सामान एकत्रित करके रखता है। कोई ग्राहक आता है और दुकानदार देखता है कि वह एक विशेष वस्तु की तुरन्त आवश्यकता रखता है। वह उसे इस कठिनाई में देखकर एक रुपये की वस्तु का मूल्य दो रुपये माँग लेता है। यह कार्य सर्वहिताय नहीं रहता। यदि एक दुकानदार अपनी वस्तु दिन-रात, बाल-वृद्ध, स्त्री-पुरुष जानकार-अनजान सब को एक ही मूल्य पर बेचता है तो उस दुकानदार का व्यवसाय यज्ञ रूप ही है। यह स्थिर बुद्धि का सूचक है।

यदि दुकानदार किसी बालक अथवा अनजान ग्राहक से वस्तु का उचित मूल्य नहीं लगाता, उससे अधिक लेता है तो उसका व्यवसाय लोगों की सेवा के लिये नहीं वरन् अपने स्वार्थ के लिये हो जाता है। इसी प्रकार सब कार्यों में देखा जा सकता है।

स्थिर बुद्धि का अभिप्राय यह है कि अवसर देख कामनाओं में न बह जाने वाली बुद्धि।

ऐसी मनःस्थिति उत्पन्न करने की शिक्षा ही मनुष्य, व्यक्ति और समाज का कल्याण कर सकती है। जैसे-जैसे समाज में स्थिर बुद्धि मनुष्यों की संख्या में वृद्धि होती जायेगी, समाज में राज्य की आवश्यकता कम होती जायेगी।

यह जो कुछ कहा गया है, वर्तमान युग में इस प्रकार नहीं समझा जाता। वर्तमान युग की मान्यताएँ हैं—

(१) समाज को उन्नत होना है;

(२) उन्नति का अर्थ है समाज को साधन-सम्पन्न बनाना;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(३) साधनों के लिये प्रकृति का अधिकाधिक प्रयोग करना;

(४) प्रकृति के प्रयोग के लिये प्रकृति के नियमों का अध्ययन और उनके प्रयोग के उपाय सीखना;

(५) इसके लिये विज्ञान और अर्थशास्त्र के अध्ययन की आवश्यकता है।

बस यही शिक्षा है, जिसके साथ समाज का सम्बन्ध माना जाता है।

इस शिक्षा में अभाव ये हैं—

(१) समाज के मुख्य घटक अर्थात् व्यक्ति का कहीं उल्लेख नहीं।

(२) व्यक्ति में इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि और जीवात्मा के विषय में यह शिक्षा पूर्णतः मौन है।

(३) यह भी नहीं बताया जाता कि प्रकृति के गुणों को जानकर प्रकृति का उपयोग करने के लिये कहाँ सावधानी की आवश्यकता है।

(४) कर्ता और भोक्ता गौण हैं। भोग सामग्री ही सब कुछ मान ली गयी है।

(५) सामग्री की प्रचुरता होने पर भी उसको अधिकाधिक प्राप्त करने की लालसा जागृत होती है, अथवा की जाती है।

इस कारण यह शिक्षा नहीं, कुशिक्षा है। इस कुशिक्षा की केन्द्र धुरी है—कर्म करो फल की इच्छा से। कर्म करने के स्वभाव की पूर्णतः अवहेलना की गई है।

इसका ही परिणाम है कि आज का व्यक्ति दिन-प्रतिदिन अधिकाधिक समाज के अधीन होता जाता है और समाज अधिकाधिक राज्य के आश्रय होता जाता है।

इससे पूर्ण वातावरण बुद्धि-विहीन बन गया है और एक भले व्यक्ति के लिये जीवन दिन-प्रतिदिन दुर्भर होता जाता है।

पुस्तक के दो खण्डों में हमने यह बताने का यत्न किया है कि बुद्धि क्या है, बुद्धि का कर्म से क्या सम्बन्ध है। व्यक्ति, समाज और राज्य किस कारण हैं।

अब हम अगले खण्डों में वर्तमान काल की प्रमुख समस्याओं को लेकर यह बताने का यत्न करेंगे कि क्या हो रहा है। क्यों बुद्धिवाद का विरोध हो रहा है और उससे उत्पन्न समस्याओं के लिये क्या उपाय विचार किये जा रहे हैं जो बुद्धियुक्त न होने के कारण असफल हो रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृतीय-खण्ड

: १ :

बुद्धि की होली—१

बुद्धि की बहुत महिमा मानी गयी है, वेद में और अन्य भारतीय शास्त्रों में भी। इसके गुण-गान करने वालों में सबसे अधिक महर्षि व्यास हुए हैं। उन्होंने कृष्णार्जुन संवाद में जो आज भगवद्गीता के नाम से विख्यात है, इस पर बहुत अधिक बल दिया है। एक स्थान पर तो महर्षि व्यास लिखते हैं—बुद्धि के सहाय के बिना किया कर्म गया अति हीन होता है। इस कारण बुद्धि की शरण में आओ। जो फल की इच्छा से किया हुआ कर्म है, वह अत्यन्त ही हीन होता है।

व्यक्तिगत कर्मों में कर्ता के लिये अपनी बुद्धि से विचार कर कार्य करने का विधान है तथा सामाजिक कर्मों में समाज के बुद्धि-स्थान पर स्थापित विद्वानों की सम्मति से कार्य करने का विधान है।

महाभारत में महर्षि व्यास ने दो कथानक लिखे हैं, जिनमें स्पष्ट किया है कि विद्वानों का कितना अधिकार है और वे कैसे हस्ताक्षेप कर सकते हैं।

हम वे दोनों कथाएँ यहां लिख देना चाहते है।

एक कथा है राजा वेन की।

यह तब की कथा है जब राज्य-प्रथा को आरम्भ हुए थोड़ा ही काल हुआ था।

जब मानव जनसंख्या बढ़ने लगी तो खाने-पीने की वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए यत्न करने की आवश्यकता हुई। उस समय काम, मोह और लोभ के साथ आलस्य, प्रमाद और बुद्धिविहीनता की भी वृद्धि होने लगी। बलवान दुर्बलों के परिश्रम के फल को छीनने लगे। तब धर्मप्रिय और श्रेष्ठ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनोवृत्ति वालों को इस लुटेरों के समूह के मुकाबिले में अपना संगठन बनाने की आवश्यकता अनुभव हुई। इसका नाम विद्वानों ने राज्य रखा।

तब प्रथम स्मृति-शास्त्र लिखा गया और राज-दण्ड देने वाले की खोज होने लगी। कोई तेजस्वी, धर्मात्मा, न्यायप्रिय व्यक्ति ढूंढा जाने लगा। परमात्मा की कृपा से एक व्यक्ति ढूंढा गया। उसका नाम बिरजा था।

सब भले लोग उसके पास जाकर निवेदन करने लगे कि वह ब्रह्मा जी की लिखी स्मृति के अनुसार राज्य का संचालन करे।

बिरजा ने इन्कार कर दिया। उसका कहना था कि मुझे मानव-समाज में रुचि नहीं, मैं संसार से विरक्त हो रहा हूँ।

तदनन्तर भले लोग एक अन्य व्यक्ति कीर्तिमान् के पास पहुँचे। कीर्तिमान भी धर्मबुद्धि रखने वाला एक विद्वान् था। उसे भी सांसारिक लोगों के कार्यों में रुचि नहीं थी। उसने भी इन्कार कर दिया।

तदनन्तर लोग एक अनंग नाम के व्यक्ति के पास पहुँचे। अनंग ने लोक-सेवा के विचार से राजा बनना स्वीकार कर लिया।

अनंग ने जीवन भर राज्य चलाया और अपने राज्य में बसे लोगों को सुखी रखा। अनंग की मृत्यु के उपरान्त उसके ही पुत्र अतिबल का निर्वाचन किया गया। राज्यारोहण के समय वह भले विचारों का व्यक्ति था, परन्तु राज्य पाते ही वह इन्द्रियों के विषयों में रत हो गया। इस पर भी अतिबल विद्वान् था और शिथिल चरित्र का होते हुए भी राज्य-कार्य यत्न से करता रहा।

परन्तु चरित्रहीन पिता का पुत्र हुआ वेन और उसके राज्य काल में तो उसकी कामनाओं का क्षेत्र अपने से वृद्धि पाकर समाज में फैल गया और वह राग-द्वेष के वशीभूत हो प्रजा पर अत्याचार करने लगा। जब अत्याचार बढ़ गया तब—

'मन्त्रपूतैः कुशैर्जघ्नुऋषियोब्रह्मवादिनः।' (महाभारत १२-५९-९४) अर्थात् ब्रह्मवादी ऋषियों ने सामान्य लोगों में मंत्र फूंक कर (सम्मति देकर) वेन को मरवा दिया और उसके स्थान पर पृथु को राज्य दे दिया।

इसी प्रकार की एक अन्य कथा है। जल-प्लावन के उपरान्त मनु के नई सृष्टि करने पर जो राज्य स्थापित हुए। एक मनु के पुत्र इक्ष्वाकु के द्वारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्यवंशी राज्य तथा दूसरा मनु की पुत्री ईला के पुत्र पुरूरुवा द्वारा ।

मनु एक अति विद्वान् एवं धर्मात्मा व्यक्ति था और उसने अपने सर्वश्रेष्ठ पुत्र इक्ष्वाकु को राज वंश चलाने के लिये कहा ।

ईला का पति बुद्ध, ईला से सन्तान उत्पन्न कर देवलोक में तपस्या करने चला गया। ईला की सन्तान पुरूरुवा एक श्रेष्ठ प्राणी का नाती होता हुआ भी बुरे लोगों की संगत में पड़ गया और अपने बल से उन्मत्त हो वह ब्राह्मणों के साथ झगड़ा करने लगा। ब्राह्मण बेचारे चीखते-पुकारते थे, तब भी वह उनको कष्ट ही देता था। उनको लूट-मारकर उनकी सम्पत्ति छीन लेता था।

सनतकुमार आदि ऋषियों ने पुरूरुवा को समझाया भी, परन्तु पुरूरुवा अपने बल के अभिमान में अपने उलटे मार्ग को छोड़ नहीं सका ।

पुरूरुवा लोभ से अभिभूत अपने बल के घमण्ड में अपने राज्य के सब भले लोगों को विशेष रूप में ब्राह्मणों को कष्ट देने लगा । इस पर—

ततो महर्षिभिः क्रुद्धैः सद्यः शप्तो व्यनश्यत ।।

—महाभारत १-७५-२२

अर्थात् महर्षियों को क्रोध आ गया और क्रोध में उन्होंने उसे शाप दे विनष्ट कर दिया ।

इन दो कथाओं से निम्न परिणाम निकलते हैं—

(१) प्रायः विद्वान् लोग राज्य-कार्य में रुचि नहीं रखते। वे आत्मोन्नति को, राज्य के वैभव पर उपमा देते हैं। राज्य क्षत्रिय स्वभाव के लोग ही स्वीकार करते हैं।

(२) राजा लोगों को स्मृति-शास्त्र का पालन करना चाहिये ।

(३) राज्य-शक्ति को प्राप्ति कर प्रायः राजा बुद्धि-विहीनता के कार्य करने लगते हैं।

(४) ऐसे बुद्धिविहीन कर्म करने वालों को विद्वान् लोग यत्न से नष्ट करवा दें ।

अभिप्राय यह कि समाज की भलाई अन्त में विद्वानों के अधीन ही है। जब तक समाज की कर्मेन्द्रियाँ अर्थात् शासक बुद्धि के अधीन उससे बताये मार्ग पर काम करते रहें, तब तक उनको कार्य करने देना चाहिये ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु जब वे लोग समझने पर भी न मानें तो विद्वान् लोगों का यह कर्त्तव्य है कि ऐसे लोगों को विनष्ट करा दें।

राज्य-कार्य करने वाले प्रायः राजसी स्वभाव के होने के कारण बुद्धि से हीन होते हैं। अतः समाज ने उनके आचरण के लिये स्मृति-शास्त्र बनाये हैं और यह कहा है कि वे स्मृति-शास्त्र को अपना पथ-प्रदर्शक मानकर व्यवहार करें।

इस पर भी यदि शासक स्मृति-शास्त्र, जो विद्वानों का बनाया हुआ होता है, पर आचरण न करे तो यह विद्वान् लोगों का कर्त्तव्य होता है कि ऐसे राजाओं को नष्ट कर, उनके स्थान पर श्रेष्ठ धर्मयुक्त व्यवहार करने वाला राजा बैठायें।

विद्वानों के इस अधिकार को चुनौती नहीं दी जा सकती, परन्तु शासकों ने एक अस्वाभाविक कार्य करना आरम्भ कर दिया है। वे विद्वता का रूप भी स्वयं निश्चय करने लगे हैं और उस रूप के विद्वान् उस शासक की जय-जयकार करने लगे हैं।

विद्वान् का कर्त्तव्य है कि स्वयं राजा न बने। उनको राज्य कार्य में रुचि नहीं होती। परन्तु वर्तमान युग के राजाओं ने विद्वानों की शक्ति को क्षीण करने के लिये विद्वान् निर्माण करने का कार्य अपने हाथ में ले लिया है।

यह यूरोपियन शासकों की विधि है। उनका अनुकरण करते हुए भारत में भी इस विधि को अपनाया गया है। विद्वान् बनते हैं श्रेष्ठ शिक्षा से और शिक्षा राज्य-तंत्र के अधीन कर दी गयी है।

दूसरे शब्दों में शरीर के हाथ-पाँव इत्यादि अंग मस्तिष्क को कार्य करने का ढंग बताने लगे हैं।

यह कार्य अस्वाभाविक है, प्रकृति के नियमों के विरुद्ध है और अत्यन्त मूर्खतापूर्ण है।

परन्तु भारत में यह सबसे अधिक विस्तार पा रहा है। राज्य का शिक्षा में हस्ताक्षेप भारत में मैकॉले ने आरम्भ किया था और आज उस मैकॉले की शिक्षा पद्धति से पठित वर्ग हर बात में शासक वर्ग का मुख देखने लगा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैकॉले गवर्नर जनरल की कौंसिल का एक सदस्य था। हिन्दुस्तानियों को सदा अंग्रेजों की दासता में जकड़े रखने के लिये उसने यहाँ के लोगों को अपने ढंग की शिक्षा देनी आरम्भ कर दी और इस शिक्षा से शिक्षित लोगों को सरकार की ओर से मान दिलाना आरम्भ कर दिया। इस प्रकार नौकरियों, पदवियों और ओहदों का लालच दे-देकर शिक्षा का प्रचार किया गया। धीरे-धीरे स्वतन्त्र शिक्षा निःशेष हो गयी। इसके साथ ही वे विद्वान् जो बड़े से बड़े सम्राट् को भी सन्मार्ग दिखा सकें, निःशेष हो गये।

यह प्रकृति का नियम है कि मस्तिष्क पूर्ण शरीर का संचालन करे अथवा विद्वान् लोग समाज को ठीक मार्ग दिखाते हुए ठीक प्रकार के राज्य की स्थापना करें।

परन्तु राज्य ने विद्वानों को निष्क्रिय कर दिया है, जिससे समाज के दूसरे अंग निरंकुश हो कार्य कर सकें।

शिक्षा सरकार के अधीन होने से, केवल यही नहीं कि राज्य निरंकुश हो गया है, वरन् समाजरूपी शरीर के अन्य अंग भी निरंकुश हो कार्य करने लगे हैं।

हमारा अभिप्राय यह है कि बुद्धिशील वर्ग को सरकारी शिक्षा से गुलाम बनाने का केवल यही परिणाम नहीं हुआ कि राज्य कर्मचारी निरंकुश हो गये हैं, वरन् यह भी कि व्यापारी, कर्मचारी यहाँ तक कि साधारण भंगी, चमार भी निरंकुश हो काम करने लगे हैं।

यह परिणाम है मस्तिष्क को शरीर के अधीन करने का। यदि इसे गीता के भावों में देखा जाये तो यह कहा जा सकता है कि बुद्धि को कामनाओं के अधीन कर दिया गया है। कामनाएँ हैं इन्द्रियों के विषयों में उत्पन्न मनोवृत्ति। बस यही भारतीय समाज में व्यापक रूप से हो गया है।

शराब पीने के अभ्यस्त व्यक्ति को यह कहा जाये कि शराब नहीं पी जायेगी, तो वह कहता है कि शराब पीना उसका जन्म-सिद्ध अधिकार है, वह शराब पियेगा। यही अवस्था आज पूर्ण भारतवर्ष में हो गयी है।

लोगों को सरकारी शिक्षा की शराब पीने का अभ्यास हो गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इससे जब किसी को यह कहा जाता है कि शिक्षा राजतंत्र से स्वतन्त्र होनी चाहिये तो वह ऐसा कहने वाले को पागल मानने लगता है।

समाज में शासन की आवश्यकता होती है। शासन विद्वान् के अधीन होना चाहिये। इसे विद्वानों के अधीन रखने के लिये विद्वान् संविधान बनाते हैं। परन्तु हिन्दुस्तान में संविधान सभा बनायी गयी शासकों द्वारा अथवा उन 'विद्वानों' द्वारा जो सरकारी शिक्षा-पद्धति से पठित थे। परिणामस्वरूप किसी ऐसे विद्वान् से राय नहीं की गयी जो सरकारी शिक्षा से शिक्षित नहीं था।

इसमें कारण यह था कि उस समय जिनके हाथ में शासन आया था, वे भी राज्य को अपनी रुचि और सुविधा के अनुकूल बनाने के लिये संविधान बनाना चाहते थे।

हमारा मत है कि भारत का वर्तमान संविधान एक अबुद्ध दस्तावेज है। यह उन लोगों ने बनाया है जो स्वयं सरकारी शिक्षा से शिक्षित थे अर्थात् उस बुद्धि ने यह विधान बनाया है जो स्वयं शासकों की जननी थी।

हमने इस अध्याय में बताया है कि भारतीय राजनीति की धुरी रही है विद्वत्-वर्ग। स्मृति-शास्त्र जिसे आजकल की भाषा में कानून की पुस्तक कहा जा सकता है, वह बनाया था ऋषियों ने। उसके अनुसार राज्य और प्रजा का व्यवहार चलता था। उस स्मृति-शास्त्र को राजा लोग बदलने का अधिकार नहीं रखते थे।

इस पर भी कभी राजा लोग धन तथा अधिकार से उन्मत्त हो, स्मृति-शास्त्र का उल्लंघन करते थे तो ऋषिगण राजा को पदच्युत कर देते थे। उसे मरवा डालते थे तथा उसके स्थान पर नया शासक बैठा देते थे।

ऐसा प्रतीत होता है कि वर्तमान युग के शासकों को यह भय रहता है कि विद्वान् लोग उनके शासन में बाधा डालेंगे। अतः उन्होंने विद्वत्ता के अर्थ ही बदल दिये हैं। उन्होंने शिक्षा अपने हाथ में ले ली है और अपनी रुचि के पढ़े-लिखे लोग निर्माण करने आरम्भ कर दिये हैं।

यह है पृष्ठभूमि भारत की वर्तमान शिक्षा-प्रपंच की। मैकाले ने शिक्षा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस कारण हाथ में ली थी कि अंग्रेजी शासन यहाँ सुदृढ़ हो सके । यहाँ के पढ़े-लिखे लोग ही अंग्रेजों के आचार-विचार के प्रशंसक हो जायें । यह एक तथ्य है कि इस पद्धति से पठित वर्ग ब्रह्म समाज में प्रतिष्ठा पाने लगा और अंग्रेजी सरकार भी ब्रह्मसमाजियों को अंग्रेजी राज्य का एक महान् आश्रय मानने लगी थी ।

ये लोग तथा अन्य जो तत्कालीन शिक्षा से प्रभावित थे, अंग्रेज़ी सरकार को भारत में परमात्मा की कृपा का फल समझते थे ।

समय पाकर इसी शिक्षा के उपज शासक बन गये और फिर स्वतंत्र भारत का संविधान बनाने लगे । जो कुछ उन्होंने संविधान में विचार किया, वह बहुत बड़ी सीमा तक इंग्लैण्ड के उन लोगों की विचारित बात ही थी जो भारत का राज्य छोड़ना नहीं चाहते थे और परिस्थितियों से विवश हो यहाँ से गये थे ।

हमारे विद्वानों ने उनको देवता मानकर उनकी पार्लियामेण्ट के पद-चिह्नों का अनुकरण किया । इसी से हम कह सकते हैं कि यह संविधान उनका बनाया हुआ है जिन्होंने अपनी बुद्धि अंग्रेज़ों के पास गिरवी रखी हुई थी ।

तनिक इस संविधान का अनुशीलन करें तो पाठकों को हमारी इस विवेचना का प्रमाण मिल जायेगा ।

: २ :

बुद्धि की होली—२

जब स्वराज्य स्थापित हो रहा था, भारत में शिक्षितों (शासकीय शिक्षा-पद्धति से शिक्षितों) की संख्या पाँच-छः प्रतिशत से अधिक नहीं थी और जो अंग्रेजी पढ़-लिख सकते थे अथवा समझ सकते थे, उनकी संख्या देश में एक प्रतिशत से भी कम थी । संविधान सभा में जितने सदस्य नियुक्त हुए थे, अंग्रेज़ी ही बोलते-लिखते तथा समझ सकते थे । अतः संविधान की भाषा-नीति पर जब विचार होने लगा तो भारत के इन 'महापण्डितों' में सबसे बड़े 'महापण्डित' (श्री जवाहरलाल नेहरू) हिन्दी भाषा के विरोधी हो गये ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वराज्य प्राप्ति पर दो महान् सर्वव्यापक समस्याएँ थीं और उन दोनों समस्याओं को सुलझाने में बुद्धि का प्रयोग नहीं किया गया। प्रथम कठिनाई थी मुस्लिम लीग की। मुसलिम लीग उपज थी सर सैय्यद अहमद की। इस बुद्धिमान व्यक्ति ने सन् १८५७ के स्वतन्त्रता संग्राम के उपरान्त एक पुस्तक लिखी थी—'असबाब-इ-बग़ावत-ए हिन्द'। इस पुस्तक में कुछ कहा गया था जो हिन्दुस्तान में सदियों से बोल रहे इस्लाम की गूंज थी। इस पुस्तक में लिखा था कि इस मुल्क में हिन्दू और मुसलमान दो विरोधी शक्तियाँ हैं और अंग्रेज ने इन विरोधी शक्तियों को एक दूसरे से दूर-दूर न रख कर भारी भूल की है।

पुस्तक में सैय्यद अहमद लिखते हैं—'जब नादिरशाह ईरान और अफ़गानिस्तान दोनों का मालिक बन गया तो उसने इन दोनों मुल्कों को परस्पर एक दूसरे से मित्रता बनाने का अवसर नहीं दिया। उसने इन दोनों को एक दूसरे से दूर-दूर रखा और जब एक देश बगावत करता था तो दूसरे को उसके खिलाफ लडा दिया जाता था।

'अंग्रेज ने नादिरशाह की इस नीति का अनुकरण नहीं किया और परिणाम हुआ १८५७ की बगावत। अंग्रेज़ी सरकार ने हिन्दू और मुसलमानों को एक ही सेना में रखकर उनको एक कर दिया था और १८५७ की बगावत इसका परिणाम थी।'

मुसलमान यद्यपि अधिकांश हिन्दुओं की सन्तान हैं, परन्तु अपने को हिन्दू नहीं मानते। हिन्दू जन्म से मज़हब मानते हैं। मुसलमान ऐसा नहीं मानते। वे शिक्षा का मजहब से सम्बन्ध समझते हैं।

अंग्रेज ने इस बात को समझा और १८५७ के उपरान्त वह इससे लाभ उठा रहा था। सैय्यद अहमद ने तो मुसलमानों की मानसिक अवस्था ही बतायी थी। अंग्रेज ने इससे लाभ उठाया, परन्तु कांग्रेस ने इससे लाभ नहीं उठाया।

कांग्रेस अंग्रेज़ी पढ़े-लिखे शिक्षितों का संगठन था, जो देश का न तो इतिहास जानता था, न ही मुस्लिम आन्दोलन का अर्थ। वह संगठन पग-पग पर ठोकर खाता हुआ भूल पर भूल करता चला आता था।

सन् १९४६ में जिन्ना ने संविधान सभा में बैठने से इन्कार कर दिया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस पर भी कांग्रेस ने अन्तरिम सरकार बनाते हुए अन्य मुसलमानों को सरकार में सम्मिलित कर लिया।

कांग्रेसी जोर-जोर से कह रहे थे—मुसलमान भी यहाँ के रहने वाले हैं। परन्तु मुस्लिम लीग कह रही थी हम अपने लिये पृथक् देश चाहते हैं।

अंग्रेज़ी सरकार द्वारा शिक्षित 'बुद्धिमानों' को यह समझ ही नहीं आया कि हिन्दुस्तान में ऐतिहासिक कारणों से मज़हब और देश-भक्ति पर्यायवाची शब्द हो गये हैं।

प्रायः मुसलमान देश के साथ गद्दारी कर अपने लिये पृथक् देश चाहते थे और हिन्दू देश को स्वतन्त्र देखना चाहते थे। यह हम उस समय की बात कह रहे हैं जब देश को स्वतन्त्रता मिलने वाली थी और देश का संविधान बनाया जा रहा था। इस परिस्थिति पर देश के सम्मुख दो ही उपाय थे। या तो मुसलमानों की बात मान लेते और देश भर के मुसलमानों को पाकिस्तान में धकेल दिया जाता। आखिर मुसलमानों ने यही तो पाकिस्तान में किया है।

यदि ऐसा नहीं मानना था तो फिर देश-विभाजन स्वीकार नहीं करना था। देश में गृहयुद्ध हो जाता, परन्तु इन मज़हबी दीवानों को सन्मार्ग दिखाने का यही दूसरा उपाय था।

अंग्रेजी सरकार द्वारा शिक्षित नेता-वर्ग यह सरल-सी बात नहीं समझ सके थे। मुसलमानों ने देश का विभाजन मज़हब के आधार पर माँगा था और जब यह स्वीकार हो गया तो इन 'महापुरुषों' को यह समझ नहीं आया कि मुसलमानों का देश बन जाने से भारत का प्रत्येक मुसलमान भारत देश का नागरिक नहीं रहा।

हम कहते हैं कि संविधान एक अबुद्ध दस्तावेज़ है। यह आज भी एक प्रश्न है कि मुसलमान इस देश में क्या स्थिति रखता है।

तनिक गणना करनी चाहिये कि सन् १९४७ से सन् १९७९ तक देश में कितने हिन्दू मुसलमान फसाद हुए हैं और उनमें से बहुतों की जाँच के लिये कमिशन नियुक्त किये गये हैं। उनकी रिपोर्ट पढ़नी चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संविधान में इस समस्या का सुझाव न रखना, यह नहीं बताता क्या कि संविधान परिस्थितियों से अनभिज्ञ, अशिक्षितों का बनाया हुआ है ?

संविधान कोई धर्म-ग्रन्थ नहीं जो लोगों को अज्ञान और प्रमाद की गहरी नींद से जगा देने के लिये बनाया गया हो। देश में एक सहस्र वर्ष के उपरान्त देश के अपने लोगों का राज्य स्थापित करने का अवसर था। नौ-दस करोड़ के लगभग लोग कहते थे कि वे अपना पृथक् राज्य चाहते हैं और ये 'बुद्धि के महापण्डित' इस समस्या से आँखें मूंद, मुसलमानों को इस देश में अधिकाधिक संख्या में रखने के लिये संविधान में सुविधाएँ दे रहे थे।

हमारा विचार है कि संविधान के प्राक्कथन में इसका उल्लेख होना चाहिये था कि इस्लाम को मानने वाले इस देश के नागरिक नहीं हो सकते।

संविधान के प्राक्कथन में कुछ इस प्रकार लिखा होना चाहिये था कि मुस्लिम मज़हब के अलावा भारत के लोग···। यह क्यों ? केवल इस कारण कि हिन्दुस्तान के मुसलमान इस्लाम को केवल मज़हब ही नहीं मानते थे। वे यहाँ एक स्वराज्य-विरोधी राजनीतिक दल के रूप में उपस्थित थे।

हिन्दुस्तान में रहने वाले मुसलमान हिन्दुओं और दूसरे मज़हब वालों से मिल कर राज्य भोग करना नहीं चाहते थे। वे हिन्दू, सिक्ख और ईसाईयों से पृथक् राज्य चाहते थे। इस कारण तत्कालीन अवस्था में बुद्धियुक्त बात यही हो सकती थी कि इस देश में उन लोगों का राज्य स्थापित करने के लिये संविधान बनाया जाता जो सबके साथ एक होकर रहना चाहते थे।

भूमण्डल में इस्लाम आज भी एक मजहब नहीं वरन् एक राजनीतिक दल है। वर्तमान इसराईल और अरब देशों के झगड़े से यह बात स्पष्ट हो गयी है। लेबनान में ईसाईयों और मुसलमानों के झगड़े का आधार भी यही है और यही बात शाह को ईरान से निकालने से प्रकट होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

भारत, जहाँ इस बीसवीं शताब्दी में भी, मज़हब के नाम से देश-

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विभाजन चाहने वालों को जब पृथक् देश दिया गया, तो उसे केवल मात्र मजहब कहना आज से पाँच सौ वर्ष पूर्व के जंगली यूरोप में पहुँच जाना है।

जो इस देश में रहना नहीं चाहते थे और अन्य देशवासियों से, अपने अधिकार पृथक् तथा उनसे अधिक माँगते थे, उनको इस देश की नागरिकता नहीं मिलनी चाहिये थी।

जो देश उन्होंने अपना बनाया है, वहाँ मुसलमान के अतिरिक्त किसी भी अन्य मत के मानने वाले को उनके बराबर के अधिकार प्राप्त नहीं हैं।

ये लोग (उस समय के मुसलमान) इस्लाम को एक राजनीतिक ईकाई मानते थे और अपने लिये पृथक् देश चाहते थे। इस कारण यही इसका निष्कर्ष होना चाहिये था कि भारत का यह संविधान उन लोगों के लिये न हो जो इसे अपना देश नहीं समझते।

संविधान में दूसरी अबुद्ध बात यह है कि इसमें परमात्मा के अस्तित्व, अभिप्राय यह है कि प्राणियों से ऊपर किसी प्रकार की ज्ञानयुक्त शक्ति के अस्तित्व का उल्लेख नहीं है।

भारतीय शास्त्र मानते हैं कि संसार में दो ही प्रकार के प्राणी हैं। गीता में स्पष्ट कहा है—इस मानव लोक में दो ही स्वभाव के लोग रहते हैं। वे हैं असुर और दैवी स्वभाव वाले। (भ० गीता १६-६)

हमारा यह निश्चित मत है कि भारत मुख्यत: दैवी स्वभाव वालों का देश है। दैवी स्वभाव वाले लोग परमात्मा के अस्तित्व को स्वीकार करते हैं।

हमारा दावा है कि इस महाशक्ति का अस्तित्व एक वैज्ञानिक सत्य है। अत: यदि कोई ऐसी बात कहे जो असिद्ध है, ज्ञान-विज्ञान से स्वीकार नहीं की जा सकती तो उसको संविधान जैसे दस्तावेज में स्थान नहीं देना चाहिये। अत: भारत देश के संविधान के प्राक्कथन में कुछ ऐसा लिखना चाहिए था कि हम यह विश्वास करते हैं कि इस जगत् को नियंत्रण में रखने वाली एक महान् तथा उच्च शक्ति है……

इसके आगे जो संविधान में लिखा है कि हम प्रजातान्त्रिक गणतन्त्र की स्थापना का निश्चय करते हैं (Having solemnly resolved

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

to constitute into a Sovereign Democratic Republic···)

परन्तु पीछे बनने वाली सरकारों ने इसे भी दूषित कर दिया है। अब प्रजातांत्रिक शब्द के साथ दो विशेषण लगा दिये हैं यथा—समाजवादी सेकुलर (मत निरपेक्ष) प्रजातान्त्रिक गणतन्त्र। (Sovereign Socialist secular Democratic Republic...)

ये शब्द इन्दिरा गांधी के काल में संविधान में जोड़े गये थे।

हमारा विचार है कि इन शब्दों को बीच में जोड़ देने से भारत देश के संविधान को और अधिक अबुद्धियुक्त बना दिया गया है।

शब्द 'सोशलिस्ट' तथा 'सेकुलर' दोनों बहुत ही विस्तृत अर्थों वाले हैं। सोशलिस्ट का अर्थ नपाल के पंचायती राज्य से लेकर और रूस के कम्यूनिस्ट राज्य तक है तथा दोनों के बीच बहुत कुछ है। इसका कोई निश्चित अर्थ नहीं और इसी कारण यह सम्भव है कि कोई भी राजनैतिक दल भारत राज्य के साथ छलना कर इसके संविधान के आधारभूत सिद्धान्त और प्रयोजन को ही इसमें से मिटा दे।

इसी प्रकार सैकुलर शब्द का अर्थ मज़हब विहीन से लेकर profane अपवित्र तक अर्थों में लिया जा सकता है।

कोई भी अच्छा-सा अंग्रेज़ी भाषा का शब्द कोश लेकर इन शब्दों का अर्थ देखा जा सकता है। संविधान में इन शब्दों के अर्थ की परिधि सीमित नहीं की गयी।

हमारे प्रथम प्रधानमन्त्री और प्रायः मूर्ख-मण्डली केवल अंग्रेजी पढ़े-लिखे राजनैतिक सैकुलर का अर्थ धर्म निरपेक्ष करते हैं। परन्तु किंचित् मात्र भी हिन्दी पढ़ा व्यक्ति संस्कृत शब्द 'धर्म' का अर्थ जानता है। धर्म का सम्बन्ध मानव कर्त्तव्यों से है और ये महामूर्ख गला फाड़-फाड़ कर इस सैकुलर शब्द का अर्थ धर्म-निरपेक्ष अर्थात् धर्म में पक्ष-रहित मानते हैं। धर्म है सत्य बोलना, चोरी न करना, ज्ञान और बुद्धि को विकास देना और यदि सैकुलर मान लिया जायेगा तो कोई सत्य बोले, कोई झूठ बोले, अथवा कोई चोरी करे किसी स्त्री से बलात्कार करे, राज्य उससे तटस्थ रहेगा।

कदाचित् इसी कारण संसद में झूठ बोलना अपराध नहीं माना गया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तथा बाहर भी झूठ बोलने की कोई सजा नहीं दी जाती।

हम समझते हैं कि हमारे देश के संविधान के आरम्भ में ही विभ्रम फैलाने वाले शब्द प्रयोग किये गये हैं।

इसमें कारण हमने बताया है कि भारत का संविधान बनाने वे लोग बैठे थे जो संविधान बनाने की योग्यता नहीं रखते थे। उस समय की स्थिति का वर्णन करें तो यह इस प्रकार थी कि देश भर के मुसलमान भारत से पृथक् अपना देश बनाने के लिए व्याकुल थे और संविधान में यह कह दिया गया कि जो भी—

धारा-५—इस संविधान के आरम्भ होने के समय भारत-भूमि पर रहता है और जो—

(१) भारत भूमि में पैदा हुआ है;

(२) जिसके माता-पिता में कोई एक भारत भूमि में पैदा हुए हैं;

(३) जो संविधान के आरम्भ होने से सामान्य रूप में पाँच वर्ष पहले से यहां रहते हैं; इस देश के नागरिक हैं।

इस धारा से वे सब मुसलमान जिन्होंने लड़-झगड़ कर, देश-द्रोह करते हुए अपने लिए पृथक् देश माँगा था, सब-के-सब बिना किसी आश्वासन दिये भारत के नागरिक बन गये थे।

हमारा यह मत है कि जो पाँच सौ के लगभग भारत का संविधान बनाने दिल्ली में बैठे थे, वे इसे बनाने की योग्यता नहीं रखते थे। उनको सन् १९२२ से, जब मोपला-विद्रोह हुआ था, लेकर सन् १९४७ तक, जब पूर्ण पंजाब में खून-खराबा इस आधार पर हो रहा था कि मुसलमान उस राज्य में नहीं रहेंगे, जिसमें गैर-मुसलमान रहते हैं, हिन्दू-मुसलमानों के इतिहास का ध्यान करना चाहिये था।

यह कहा जा रहा है कि सन् १९४७ से सन् १९७८ तक देश में सहस्रों ही छोटे-मोटे हिन्दु-मुसलमान फसाद हो चुके हैं और दिनानुदिन अधिक हो रहे हैं।

यह उन लोगों को भारत में रहने की स्वीकृति देने के कारण ही है जो भारत के अन्य निवासियों के साथ रहना नहीं चाहते थे।

मुसलमान और देश में अन्य रहने वालों में भी असहयोग की बात

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के समान ही एक अन्य बात है जिसकी ओर हम पाठकों का ध्यान खचींना चाहते हैं।

भूमण्डल के सब मनुष्य मुख्यतया दो समुदायों में बंटे हुए हैं। एक ईश्वरवादी हैं और दूसरे अनीश्वरवादी हैं। जैसे ईश्वरवादियों में कई भेद हैं, वैसे ही अनीश्वरवादियों में भी हैं। परन्तु मनुष्य समाज में ये दो ही समुदाय हैं।

भारत देश किसके लिये है, यह नहीं बताया। अँग्रेज़ी पढ़े-लिखे बुद्धि के कोल्हू यह समझते हैं कि यह भेद मूर्खों ने बनाया है। परन्तु यह मानव मन के दो रूपों को प्रकट करता है। जो लोग अनीश्वरवादी हैं, वे जब शक्तिशाली बन जाते हैं, तब समझने लगते हैं कि वे ही ईश्वर हैं और जो चाहें कर सकते हैं। परिणामस्वरूप सामान्य लोगों के लिये उनका राज्य दुःख, कष्ट और विपत्ति का कारण बन जाता है।

यहाँ इतना समझ लेना चाहिए कि हम परमात्मा के किसी पीर-पैगम्बर, गुरु अथवा अवतार को स्वीकार करने पर बल नहीं दे रहे। ये निजी बातें है। इस पर भी यह आवश्यक था कि भारत देश ईश्वरवादियों का देश होता।

यह ठीक है कि संविधान में लिख देने मात्र से मनुष्य की मान्यताएं बदल नहीं जातीं, परन्तु देश के संविधान में यह संकेत होने से कि भारत ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास रखने वालों का देश है, राजनीतिक प्रभुता प्राप्त करने वालों के कार्यों पर कुछ नियंत्रण रखा जा सकता था। इस एक विचार से ही जाति का उन्नति की ओर मुख हो सकता था। ऐसा स्वीकार कर लेने से देश की पूर्ण शक्ति नागरिकों के चरित्र को उन्नत करने की ओर लग सकती थी।

विश्व के ऊपर सर्वोच्च शक्ति का होना एक वैज्ञानिक तथ्य है। वह शक्ति कैसी है, उसका रूप-रंग कैसा है, उसके गुण क्या हैं, यह विद्वानों के निश्चय करने की बात है। उनमें मतभेद भी हो सकता है। परन्तु जहां तक संविधान का सम्बन्ध है, उसमें ईश्वर के अस्तित्व मात्र को स्वीकार कर लेने से उन्नति का मार्ग प्रशस्त हो सकता था।

एक वेद मन्त्र है कि ईश्वर पाँचजनों में विराजमान रहता है। मंत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार है—

> यत्पांचजन्यया विशेन्द्रे घोषा असृक्षत ।
> अस्तृणाद् बर्हणा विपो३र्यो मानस्य स क्षयः ॥
>
> ऋ० ८-६३-७ ॥

अर्थ हैं—

जब प्रजा के पांचों वर्ग पूर्ण बल से घोषणा करते हैं, तब वह परमात्मा अपने महत्त्व से सब के मन का स्थान हो जाता है।

अभिप्राय यह है कि परमात्मा जनता की आवाज़ है। परन्तु जब राज्य परमात्मा को ही न माने तो वह जनता को भी नहीं मानता। वह भगवद्‌गीता के कथनानुसार कुछ ऐसा मानने लगता है—

> इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम् ।
> इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम् ॥
> असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि ।
> ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान्सुखी ॥
>
> भ० गीता० १६-१३,१४ ॥

अर्थ हैं—

(जो परमात्मा को नहीं मानते और किसी कारण वश किसी उच्च पद पर जा पहुंचते हैं, वे विचार करने लगते हैं—

मैंने आज यह पा लिया, (कल) उस मनोरथ को सिद्ध करूंगा। यह धन मेरे पास है और फिर वह भी मेरा होगा। इस शत्रु को मैंने मार डाला है एवं औरों को भी मारूंगा। मैं ईश्वर हूँ, मैं भोग करने वाला हूं, मैं सिद्ध, बलवान और सुखी हूं।)

इस प्रकार के मूर्खों को भारत में नेता बनने से रोकने के लिए ही संविधान में एक महान् शक्ति के अस्तित्व का उल्लेख हम आवश्यक समझते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

: ३ :

बुद्धि की होली—३

अँग्रेजी पढ़े-लिखे मैकॉले के शिष्यों ने, हमारा अभिप्राय है अँग्रेजियत के गुलामों ने भारत का संविधान बनाना आरम्भ किया तो इसके प्राक्कथन में ही अपनी विशेष 'बुद्धि' का प्रदर्शन करना आरम्भ कर दिया।

इन 'महापुरुषों' को यह विचार नहीं आया कि इस देश में एक बहुसंख्या में लोग प्राचीन शास्त्रों के ज्ञाता भी हैं, जो मानते हैं कि यूरोपिन आचार-विचार असुरों के से हैं। पाँच सौ बुद्धिमानों में से किसी को यह समझ नहीं आया कि संस्कृत भाषा के किसी विद्वान् जो यहां की प्राचीन स्मृतियों तथा राज्य विधान के विषय में कुछ जानता हो, बुला कर पूछ लें कि वह देश का कल्याण किस प्रकार सम्भव मानता है।

ये मुट्ठी भर लोग जो अपनी डुग्गी आप ही पीटने में कुशल थे, दिल्ली में आ बैठे और पैंतीस-छत्तीस करोड़ देशवासियों के लिए बेड़ियां निर्माण करने में लग गए।

देश में कुछ एक ऐतिहासिक कारणों से विदेशियों की दासता उत्पन्न हुई थी और कई कारणों से वह एक सहस्र वर्ष के लगभग चलती रही।

अंग्रेजों ने अपनी चतुराई और सैनिक योग्यता से दो सहस्र मील लम्बे-चौड़े देश पर एकाकी शासन स्थापित किया। उन्होंने यह उचित समझा कि देश में भेद पर भेद उत्पन्न किये जायें जिससे हिन्दुस्तान में उनका शासन सदैव के लिए बना रहे। परन्तु दो विश्व युद्धों में अँग्रेजों को इतना दुर्बल कर दिया कि वे अपने विस्तृत साम्राज्य को अपने अधीन नहीं रख सके। अतः उन्होंने एक कछुएँ की भांति अपना सर अपनी खोपड़ी के नीचे सिकोड़ना आरम्भ कर दिया और भारत को स्वतन्त्र कर यहां से जाने का प्रबन्ध कर लिया।

वे भारत के टुकड़े-टुकड़े कर चल दिए और अपने विचार से उन लोगों को शासक बना गए जो न तो हिन्दुस्तानी थे, न ही कुछ अधिक बुद्धिशील थे।

संविधान सभा की कार्यवाही में तो यह एक विचार हवा में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उड़ने वाले लोगों की कहानी प्रतीत होती है। जब भी कोई देश को एक संगठित ईकाई में बांधने का विचार उपस्थित करता है तो सब भयभीत हो एक दूसरे से झगड़ा करने लगते हैं। एक उदाहरण इसका दे दें तो हमारे कथन का प्रमाण मिल जायेगा।

कुछ यूरोपियन और जर्मन राजनीतिज्ञों ने भाषा और सभ्यता एवं संस्कृति का सम्बन्ध बनाने का यत्न किया है। इन में फिशट (Fischte) जहान् (Jahan) और विल्हम जौन हम्बोलट (William Jhon Hombolt) उल्लेखनीय हैं।

इन लोगों की चलाई हुई प्लेग अंग्रेज़ी साहित्य के साथ भारत में भी आयी और भाषा के साथ देश, देशभक्ति, सभ्यता इत्यादि का सम्बन्ध जोड़ दिया गया।

बंगाली सभ्यता और बंगाली संस्कृति, तमिल सभ्यता और तमिल संस्कृति से भिन्न हो गयी। गुजराती सभ्यता और संस्कृति राजस्थानी सभ्यता और संस्कृति से भिन्न हो गयी। अंग्रेज़ी राजनीति ने इस विचार की पुष्टि की। सन् १९२१ में अंग्रेज़ी शासन द्वारा दिये सुधारों में शिक्षा को प्रान्तीय विषय कर दिया गया। अंग्रेज की यह नीति थी कि पंजाबी तथा बंगाली आचार-विचार भिन्न-भिन्न माने जायें।

केवल यही नहीं वरन् पंजाब के स्कूल के विद्यार्थी को लखनऊ के स्कूल में जाकर शिक्षा प्राप्त करने में दीवारें खड़ी कर दीं।

और अंग्रेजों से सहज में ही स्वराज्य पाने वाले, संविधान के महापण्डितों ने इस विष को पीकर अपने शरीर का अंग बनाया हुआ था। अतः भाषा के विचार पर संविधान सभा में ऐसा झगड़ा उत्पन्न हुआ कि जो एक दिन में निश्चय होना था, वह दो वर्ष तक नहीं हो सका और जो कुछ भाषा के विषय में निश्चय हुआ, वह भी इन 'बुद्धिमानों' को पसन्द नहीं आया।

भाषा न तो देश की सूचक है, न ही सभ्यता संस्कृति की। यह ज्ञान-विज्ञान की सूचक भी नहीं। यह बोलने वालों में विचार-संचार का साधन है।

सन् १९४७ में अंग्रेज़ी पढ़े-लिखों की संख्या दो प्रतिशत थी और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धारा-प्रवाह बोलने वाले तो दस हज़ार में एक भी नहीं था । परन्तु बंगला, तमिल, गुजराती, मराठी में, यूरोप की छूत से उत्पन्न झगड़े का लाभ इन दस हजार में से एक ने उठाया ।

देश में साठ प्रतिशत लोग हिन्दी बोलते थे अथवा समझते थे । उसमें बात न कर ये 'महापण्डित' अंग्रेज़ी में बात करने लगे और फिर मान बैठे कि उनकी मां ब्रिटिश पार्लियामैण्ट है ।

ब्रिटिश पार्लियामैण्ट के विकास की कथा यह है कि पार्लियामैण्ट स्थापित तो हुई थी सोलहवीं शताब्दी में जब 'मैगना कार्टा' से ब्रिटेन का राज्य राजा के हाथ से छीना गया, परन्तु वह पार्लियामैण्ट केवल इंग्लैण्ड के रईसों की थी । उसमें जन साधारण का हस्ताक्षेप नहीं था ।

वयस्क मतदान की स्वीकृति इंग्लैण्ड की जनता को बीसवीं शताब्दी में ही मिली है । यदि ईमानदारी से ब्रिटिश इतिहास का अध्ययन किया जाये तो ब्रिटिश साम्राज्य का विकास हुआ सोलहवीं शताब्दी और बीसवीं शताब्दी के भीतर और ब्रिटेन के भीतर और बाहर ब्रिटिश साम्राज्य का ह्रास आरम्भ हुआ प्रथम जर्मन युद्ध के उपरान्त, जब सत्य अर्थों में वयस्क मतदान की प्रथा स्वीकार की गयी । औरतों को मत देने का अधिकार तो सन् १९२७-२८ में प्राप्त हुआ और उसके उपरान्त ब्रिटिश साम्राज्य हवा में विलीन हो इंग्लैण्ड में सीमित हो गया । एक छोटा सा द्वीप जिसका क्षेत्रफल लगभग पंजाब के बराबर है ।

इस देश की पार्लियामैण्ट को अपने राज्य की मां मानने वाले वे पांच सौ के लगभग हिन्दुस्तानी महापण्डित विधान बनाने बैठे थे ।

इस पर भी इनमें भी कुछ बुद्धिशील लोग थे जो देश की प्राचीन परम्परा से प्रभावित थे और देश में हिन्दुस्तानी भाषा तथा देवनागरी लिपि लाना चाहते थे ।

इस विषय में यह स्मरण रखना चाहिए कि भाषावाद का राग सन् १९०८ में कांग्रेस ने गाया था । उस समय की कांग्रेस तत्कालीन अंग्रेज़ी राज्य की पिट्ठू थी । अंग्रेज़ी सरकार भाषा के विचार से भारतवर्ष में भेदभाव चाहती थी और कांग्रेस ने इसे स्वीकार किया था ।

तब का बीज सन् १९४८ में फैला । श्री के० एम० मुंशी इस विषय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में अपनी पुस्तक Pilgrimage to Freedom में लिखते हैं—

"...परन्तु भाषावादियों का हो-हल्ला असह्य हो गया और जून १७, १९४८ की संविधान सभा के प्रधान ने एक कमीशन नियुक्त की जो यह देखे कि भाषा के नाम पर राज्य बनाये जायें अथवा न। इस कमीशन के अध्यक्ष थे श्री एस० के० धर, इलाहाबाद हाईकोर्ट के जज। और मैं (श्री के० एम० मुंशी) इस कमीशन का सहयोगी सदस्य नियुक्त किया गया।

'तत्कालीन बड़े-बड़े नेता इस विचार के विपरीत थे, परन्तु संविधान सभा में अंग्रेज़ी की जूठन का स्वाद लिये हुए नेता जो अपने विचार अंग्रेज़ी भाषा के ग्रन्थ पढ़ कर बनाये हुए थे, और देश में राज्यों का बंटवारा भाषा के विचार से चाहते थे, इसके लिये शोर मचा रहे थे।

इस कमीशन ने रिपोर्ट दी। उसमें कहा था—

'देश में प्रान्त केवल भाषा के विचार से अथवा भाषा को मुख्य मान बनाना देश तथा जाति के व्यापक हितों में नहीं है...

—P. 230

'इस रिपोर्ट को कांग्रेस ने स्वीकार नहीं किया और पण्डित जवाहर लाल ने दिसम्बर, १९४८ में एक दूसरी कमेटी नियुक्त कर दी। उसमें जवाहरलाल नेहरू, सरदार वल्लभभाई पटेल और सीतारामैय्या थे। इस कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में एक गुर निश्चित किया। वह इस प्रकार था...

(१) जब कांग्रेस ने भाषावार प्रान्त बनाने का निश्चय किया था, उस समय वह इस सिद्धान्त के कार्य-रूप से अवगत नहीं थी। इस कारण इसको इससे उत्पन्न होने वाली व्यवहारिक कठिनाइयों का अनुभव नहीं था।

(२) मुख्य विचार है भारत की सुरक्षा, ऐक्यता और आर्थिक समृद्धि और प्रत्येक फूट डलवाने वाली तथा पृथक्-पृथक् करने वाली प्रवृत्ति का विरोध करना।

(३) भाषा केवल संगठन करने वाली शक्ति नहीं वरन् पृथक्-पृथक् करने वाली भी है।

(४) पुरानी भाषावार प्रान्त बनाने की कांग्रेस की नीति प्रयोग करने से पहले बहुत सावधानी का प्रयोग करना चाहिये और देखना चाहिये कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देश में प्रशासकीय अव्यवस्था, परस्पर विरोध अथवा राजनीतिक और आर्थिक अव्यवस्था उत्पन्न न हो जाये।'

श्री के० एम० मुंशी अपनी पुस्तक में आगे लिखते हैं—

'भाषावादियों के प्रथम आक्रमण पर ही कांग्रेस ने दिल छोड़ दिया। कांग्रेस बातें बुद्धि की करती थी और कर्म बुद्धिहीनों की भांति करती थी।

'यद्यपि जवाहरलाल प्रान्तों को भाषा के आधार पर बांटने का विरोधी था, परन्तु श्री पत्ति श्रीरामुलु का भूख-हड़ताल से, आत्महत्या कर लेने पर जो भावनाओं का तूफान उठा, उसके सम्मुख वह झुक गया और पृथक् आन्ध्र राज्य बनाने के लिये राजी हो गया।

(पृ० २३१)

इसमें कारण आन्ध्र प्रदेश के और तमिल देश के दोनों राजनीतिज्ञों का अबुद्ध व्यवहार था, जिसने यह दुर्घटना प्रस्तुत की।

पहली बात तो यह हुई कि स्वराज्य के उपरान्त संविधान से तमिल, तेलुगु, कन्नड़ इत्यादि भाषाएँ स्वीकार हो चुकी थीं। संविधान में चौदह भाषाएं मानी जा चुकी थीं। जब मानी थीं तो यह स्वभाविक था कि तमिल और तेलुगु में विवाद होता।

होना यह चाहिये था कि शिक्षा का विषय राज्यों का न होकर केन्द्रीय राज्य का होता।

हमारा यह विचार है कि यदि संविधान सभा के सदस्यों में भारत देश की एकता का विचार सर्वोपरि होता तो संविधान में वे इसका प्रबन्ध करते।

संविधान में, प्राक्कथन के उपरान्त देश का नाम, सीमाएं और नागरिकता के विषय में कहने के उपरान्त एक धारा यह होनी चाहिये थी कि—

देश में ऐक्य और संगठन प्राप्त करने के लिये संयुक्त राज्य आरम्भ में एक स्टैट्यूटरी शिक्षा समिति निर्माण करेगा जो देश के लड़के और लड़कियों के ज्ञानवर्द्धन के लिये शिक्षा का प्रबन्ध करेगी। यह समिति संसद अथवा अन्य किसी राजनीतिक शक्ति के अधीन नहीं होगी।

हमारा विचार है कि देश के बच्चों की शिक्षा और भाषा का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्न इस कौंसिल के अधीन होना चाहिये था। इस कौंसिल में भारतीय शिक्षा पद्धति के विद्वानों की प्रचुर संख्या होनी चाहिये थी। इस कौंसिल को राजनीतिक हेर-फेर से पृथक् रखकर देश को एक ऐसे मार्ग पर डाल देना चाहिये था जिससे शताब्दियों तक एक स्थिर दिशा में देश को प्रगति पर लगाया जा सकता।

वस्तुस्थिति यह है कि संविधान सभा के सदस्य प्रायः अंग्रेज़ी राज्य द्वारा चलाई शिक्षा से शिक्षित थे और अंग्रेजी सरकार से दी जाने वाली शिक्षा इस बात का साधन थी जिससे देश दुर्बल, अज्ञानी और सदा के लिये अंग्रेजों का दास बना रहे।

हमारा निश्चित मत है कि शिक्षा राजनीतिक तंत्र से पृथक् रहनी चाहिये। यह देश के विद्वानों की देख-रेख में पालित और प्रसारित हो।

देश की शिक्षा के लिये धन तो सरकार की ओर से ही मिलना चाहिये। जैसे सेना का बजट अथवा ऑडिटर जनरल के विभाग का खर्चा सरकार देती है, परन्तु ये विभाग संसद के अधीन नहीं होते। सेना में सुरक्षा मंत्री हस्तक्षेप तो करता है, यद्यपि यह भी अशुद्ध व्यवहार है।

सुरक्षा मंत्री का सम्बन्ध सेना का देश-हित में प्रयोग हो सकने के साथ ही रहना चाहिये। सेना के भीतरी मामलों में सुरक्षा मंत्री का हस्त-क्षेप नहीं होना चाहिये।

प्रश्न उपस्थित होता है कि इस कौंसिल का निर्माण कैसे हो ? कौन करे और किनको इसमें स्थान मिले ?

इसमें हमारा मत है कि यह देश के लोगों के बहुमत से निर्माण नहीं होनी चाहिये। ऐसा करना सिर को पाँवों के अधीन करने के तुल्य हो जायेगा।

वर्तमान स्थिति में, विद्वान् और अविद्वान् में भेद का आधार ही नहीं रहा और शिक्षा के प्रबन्ध में अविद्वानों का हस्तक्षेप होना ही नहीं चाहिये।

अंग्रेज़ी सरकार ने कुछ मिथ्यात्व देश में फैला रखे थे और वे मिथ्यात्व आज भी चल रहे हैं। अंग्रेजी राज्य के जाने के समय भी ये मिथ्यात्व प्रचलित थे। इनमें से कुछ एक की ही [illegible] जा सकती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। ये हैं—

(१) पढ़े-लिखे का अर्थ था अंग्रेज़ी बोल-लिख सकने वाला। आज भी यही माना जाता है।

(२) सरकारी स्कूल-कालेज में पढ़ा विद्वान् समझा जाता था और आज भी समझा जाता है।

(३) कोट, पतलून, नैक्टाई, कालर लगाने वाला सभ्य माना जाता था।

(४) शराब पीना और यौन-सम्बन्धी आचार-विचार में शिथिलता सभ्यता का अंग माना जाता था।

(५) सरकारी अफसरों से मेल-जोल रखने वाला नेता माना जाता था।

(६) विलायत (इंग्लैण्ड तथा यूरोपीय देशों) में शिक्षा प्राप्त व्यक्ति अति विद्वान् समझा जाता था।

इसी प्रकार इनसे उलट लक्षणों वाला व्यक्ति अनपढ़, असभ्य माना जाता था।

संस्कृत भाषा का एक विद्वान् वेदादि शास्त्रों का तथा न्याय एवं स्मृति का ज्ञाता एक लॉ-कालेज के थर्ड क्लास ग्रेजुएट से भी घटिया माना जाता था।

इन्हीं भ्रान्तियों के कारण इन लोगों ने देश के बच्चों की शिक्षा का स्तर अति निम्न कोटि का बना दिया है और कई विषयों में तो कुशिक्षा को शिक्षा कहा जाता है। यही कारण है कि भूमण्डल भर की गन्दगी यहाँ भारत में एकत्रित हो रही है।

वर्तमान स्थिति में शिक्षा-समिति का निर्माण अति कठिन है। इस पर भी हम एक दो सुझाव देते हैं कि क्या होना चाहिये।

(१) शिक्षा (education) और कारीगरी (technology) के अध्ययन के लिये दो पृथक्-पृथक् समितियाँ होनी चाहियें। शिक्षा-ज्ञान-विज्ञान (pure sciences) की सिद्धान्तात्मक शिक्षा का नाम है।

(२) सिद्धान्तात्मक ज्ञान-विज्ञान में पृथ्वी से लेकर परमात्मा तक का ज्ञान आ जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम यह जानते हैं कि यूरोपियन शिक्षा से शिक्षित लोग परमात्मा का नाम सुन ऐसे चटपटा उठेंगे मानो बिच्छू ने काटा हो। परन्तु उनको यह विदित नहीं कि उनकी इन्हीं मान्यताओं ने इस पृथ्वी पर मनुष्य-समाज की दशा एक नरक-कुण्ड की-सी कर रखी है।

परमात्मा, जैसा हम मानते हैं और जैसा हम वेद शास्त्रों में वर्णित देखते हैं, एक वैज्ञानिक तथ्य है। जैसे पृथ्वी चपटी नहीं वरन् गोल है, यह कहा जा सकता है, वैसे ही परमात्मा है और वह इस सृष्टि-रचना, इसके पालन और विघटन में कारण है, यह मानना पड़ेगा।

वेदान्त दर्शन का प्रथम कथन ही एक अकाट्य युक्ति है, जिससे परमात्मा का अस्तित्व सिद्ध होता है। कहा है—

जन्माद्यस्य यतः॥ —१-१-२

अर्थ—सृष्टि-रचना, पालन और संहार करने वाला जो है, वह परमात्मा है। यह विज्ञान का सिद्धान्त है कि प्रकृति का छोटे से छोटा कण बिना किसी के धक्का दिये हिलता नहीं और यदि वह एक दिशा में चल रहा हो तो बिना किसी के रोके रुकता नहीं। यह एक तथ्य है और इस युक्ति से देखा जाये तो सृष्टि की रचना करने वाला, सूर्य, चन्द्र को चलाने वाला, कोई होना चाहिये। इस युक्ति से ईश्वर का अस्तित्व ऐसे ही सिद्ध है जैसे पृथ्वी का गोल होना सिद्ध है।

(३) इस कारण विद्वान् का प्रथम लक्षण यह है कि वह ईश्वर के अस्तित्व पर विश्वास रखे। इससे ही सब प्रकार के ज्ञान का श्रीगणेश होता है।

भारतीय ज्ञान-विज्ञान के शास्त्रों में परमात्मा से उतर कर प्राणी का ज्ञान है।

(४) वेदान्त दर्शन में कहा है कि संसार में दो प्रकार के पदार्थ दिखाई देते हैं। एक शरीरी कहाते हैं और दूसरे अशरीरी।

शरीर प्राणी का होता है। ये शरीरी, कुछ दूसरी वस्तुओं से भिन्न गुण रखते हैं। यह भेद क्यों है, इसका ज्ञान और इसकी विवेचना विद्वत्ता का दूसरा लक्षण है।

(५) शरीर में निर्जीव अन्न खाया जाता है और यह चेतन लक्षण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाला शरीर बन जाता है। इसका कारण और इसकी प्रक्रिया जानना विद्वत्ता का तीसरा लक्षण है।

इसी प्रकार एक-एक कर विद्वान् और अविद्वान् में भेद किया जा सकता है और इन लक्षणों को देखकर विद्वानों का चयन किया जा सकता है। देश के चोटी के विद्वानों की एक समिति बनायी जा सकती है जो शिक्षा का संचालन करे।

इस दृष्टि से देखें तो कांग्रेस तथा देश के प्रमुख नेता विद्वान नहीं हैं।

विद्वानों की एक शिक्षा-कौंसिल बनाने का संविधान में विधान होना चाहिये था जो राजनीति से पृथक् रहकर देश के बालिक-बालिकाओं की शिक्षा का प्रबन्ध करती।

(६) भाषा का प्रश्न इस समिति के अधीन होना चाहिये। भाषा, विचारों और ज्ञान-विज्ञान के आदान-प्रदान का माध्यम है। इस कारण भाषा राजनीतिक विषय नहीं। यह संसद-सदस्यों के विचार करने के क्षेत्र से बाहर है।

: ४ :

मूलाधिकार

संविधान के परमावश्यक अंग व्यक्ति के मूलाधिकार हैं। भारत के संविधान में इनका समावेश संविधान के निर्माताओं में बुद्धि का कुछ-कुछ परिचय देता है।

इसका कारण भी कदाचित् यह है कि दस दिसम्बर, १९४८ को यू० एन० ओ० ने व्यक्ति के मूलाधिकारों पर एक प्रस्ताव पारित किया था। उसने ही संविधान सभा के सदस्यों को इसके लिये तैयार कर दिया प्रतीत होता है कि भारत के संविधान में इन अधिकारों का उल्लेख होना चाहिये।

अन्यथा इन मूलाधिकारों की जो दुर्दशा पण्डित जवाहरलाल नेहरू के काल में और उसकी पुत्री इन्दिरा गांधी के काल में हुई है, वह इस बात की सूचक है कि कांग्रेस दल ने मूलाधिकारों को संविधान और राज्य पर बोझा ही समझा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम समझते हैं कि व्यक्ति के अधिकार ही संविधान की आत्मा हैं और उनके बिना संविधान एक थोथा दस्तावेज़ रह जाता है।

संविधान के विभाग तीन की धारा १२ से धारा ३५ तक में इन अधिकारों का उल्लेख है।

जवाहरलाल नेहरू के काल में ही, संविधान को स्वीकार हुए अभी कुछ ही मास हुए थे कि इन अधिकारों पर आघात होने लगा था।

यह ठीक है कि भूमि के विषय में संविधान में किसी व्यक्ति का अधिकार नहीं होना चाहिये, परन्तु यह बात तो संविधान बनाने वालों को पहले ही विदित होनी चाहिये थी।

यथार्थ बात यह है कि संविधान के बनाने वाले यह बात समझे ही नहीं थे कि मूलाधिकारों का अर्थ क्या है। क्यों ये मनुष्य को प्राप्त होने चाहियें और क्यों मनुष्य के इन अधिकारों पर राज्य तथा समाज का कुछ अधिकार नहीं।

यदि उन्होंने इन मूलाधिकारों को स्वीकार किया था तो यह इस कारण नहीं कि ये इन अधिकारों को राज्य के नियंत्रण के अधीन नहीं मानते थे, वरन् इस कारण स्वीकार किया था कि यू० एन० ओ० ने इन्हें स्वीकार किया है अथवा यह भी है कि इनके आश्रय ही जब स्वयं स्वतंत्रता के लिये लड़ते हुए वे पकड़े जाते थे, तो वे छट जाते थे। वास्तव में यदि इनको ज्ञान होता कि मूलाधिकार क्यों हैं तो कदाचित् ये उनमें हेरा-फेरी करने से पहले बीस बार विचार करते।

संविधान बनाने वालों ने धारा १३ में यह कहा था—

(1) All laws in force in the territory of India tmmediately before the commencement of this constitution, in so far as they are in consisistant with the provision of this part, shall, to this extent of such inconsistancy, be void.

(2) The state shall not make any law which takes away or abridges the rights conferred by this part and any law made in contravention of this clause, shall to the extent of the contravention be void.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ है—

(१) इस संविधान क आरम्भ होने से पूर्व जितने भी कानून भारत भूमि पर लागू थे, जहाँ तक वे संविधान के इस भाग की धाराओं के अनुकूल हैं, लागू होंगे;

(२) स्टेट संविधान के इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों को छीन अथवा कम नहीं कर सकता और ऐसा कोई कानून जो इस धारा के प्रतिकूल बताया जायेगा, उस सीमा तक, जहां तक वह इस धारा के प्रतिकूल है, गलत होगा।

इस धारा से पूर्व धारा १२ में स्टेट के अर्थ बताये हैं और उन अर्थों में संसद और राज्य विधान सभाएं भी सम्मिलित हैं।

इन धाराओं (१२ और १३) के अनुसार मूलाधिकारों को बदलने का संसद को किसी प्रकार का भी अधिकार नहीं था। परन्तु १९५१ में ही धारा ३१ में ३१ (अ) जोड़ दी गई। यह ३१ (अ) धारा ३१ में दिये अधिकारों को कम करती है।

यह कहा जा सकता है कि सन् १९५१ में जो संसद थी, वह संविधान सभा भी थी और वह संविधान में संशोधन कर सकती थी। यह दावा संदिग्ध है। क्योंकि संविधान पर हस्ताक्षर २६ नवम्बर १९४९ को होने के उपरान्त संविधान बनाने का कार्य समाप्त हो गया था।

संविधान सभा के दो कार्य थे। संविधान बनाना। संविधान बनाते समय यह संविधान सभा होती थी। दूसरा कार्य था—देश का राज्य चलाना। इस रूप में यह संसद थी। जब संविधान पर हस्ताक्षर हो चुके तो इसका संविधान सभा का रूप समाप्त हो चुका था। अतः सन् १९५१ में जो धारा ३१ में धारा ३१ (अ) जोड़ दी थी, वह अनाधिकार चेष्टा थी।

परन्तु १९५२ में, नई लोकसभा निर्वाचन के उपरान्त भी संविधान के इस विभाग में संशोधन होते रहे थे।

इसी धारा ३१ में सन् १९५५ में पुनः संशोधन हुआ। हास्यप्रद बात यह है कि ये संशोधन अपने पारित होने से पहले भी प्रभावी बनाये गये (with retrospective effect) थे।

इस बात का ज्ञान नहीं कि इन संशोधनों को सर्वोच्च न्यायालय में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुनौती दी गयी अथवा नहीं । परन्तु कुछ भी रहा हो, हमारा मत है कि संसद (Parliament) संविधान के विभाग तीन में संशोधन करने का अधिकार नहीं रखती थी ।

इस बात को बताने का हमारा प्रयोजन यह है कि हमारे संविधान सभा के सदस्य एवं संसद के सदस्य कुछ वह करते रहे हैं जो करने का उनको अधिकार नहीं था ।

यह इस कारण कि इस संविधान सभा में प्रायः सदस्य बुद्धिविहीन कार्य करने वाले थे । उनके कार्य भलीभाँति विचारित नहीं थे और वे इस कार्य के योग्य नहीं थे कि भारत जैसे विशाल देश पर वे शासन करें और उसके संविधान में संशोधन करें ।

यह कैसे हुआ कि देश के वयस्क मतों से निर्वाचित प्रतिनिधि देश की जनता के अधिकारों को पददलित करने पर उतारू हो गये थे । इस विषय पर पुस्तक के अगले खण्ड में व्याख्या से लिखेंगे । यहाँ इतना बताने से ही मतलब है कि मनुष्य के मूलाधिकारों को स्वीकार कर हमारी संविधान सभा और संसद ने पीछे उनको मिटाने का यत्न किया । जब ये अधिकार बनाये थे वे यह नहीं जानते थे कि वे कितना श्रेष्ठ कार्य कर रहे हैं और जब उन अधिकारों को छीनने लगे तो नहीं समझ सके कि वह कितना बड़ा अपराध कर रहे हैं ।

मूलाधिकारों में नागरिक को जितने भी अधिकार दिये हैं, उनके साथ-साथ इन्होंने यह भी प्रबन्ध कर दिया था, जिससे मूलाधिकार लँगड़े हो रहे थे ।

सबसे पहली बात जो संविधान बनाने वालों ने की, वह यह कि इस संविधान में एक अध्याय जोड़ दिया जिसका नाम रखा 'राज्य नीति के निर्देशक तत्त्व' ।

संविधान में इनकी आवश्यकता नहीं थी । नीतियाँ समय-समय पर काल की आवश्यकताओं के अनुसार बदलती रहती हैं । जो अवांछनीय था, वह तुरन्त बदलना चाहिये था और जो उस समय बदला नहीं, उसे भविष्य में बदलने का संकेत संविधान जैसे प्रलेख (document) में लिखना एक अनाधिकार चेष्टा थी । यह भविष्य की सन्तति के हाथ-पाँव बाँधकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रख जाना था और उनकी बुद्धि को ताला लगाना था।

भविष्य की नीति के विषय में संविधान में यह एक अन्य अबुद्ध कार्य था।

और फिर इस राज्य की नीति में कुछ ऐसा भी था जो जनता के मूलाधिकारों के विरुद्ध था और वे मूलाधिकार संसद बदलने की क्षमता नहीं रखती थी।

संसद के इस अबुद्ध कार्य के कई झगड़ सर्वोच्च न्यायालय में गये।

नीति सदा सामयिक होती है। भविष्य की नीति का उल्लेख संविधान जैसे प्रलेख में आ ही नहीं सकता था। यह एक अबुद्ध कार्य था।

प्रायः सब मूलाधिकारों को लिखकर उसमें प्रतिबन्ध लगा दिये गये हैं। अर्थात् वे मूलाधिकार ऐसे हैं जो कुछ सीमित लोगों के हित के लिए रद्द भी किये जा सकते हैं। अभिप्राय यह कि कुछ लोगों को इन मूलाधिकारों से अतिरिक्त भी अधिकार दे दिये गए हैं।

उदाहरण के लिए सेवाओं के विषय में संविधान की धारा इस प्रकार है—

१६ (१) सब नागरिकों के लिए सेवा प्राप्त करने अथवा सेवा में रखने के लिए समान अवसर होंगे।

१६ (२) कोई भी नागरिक मज़हब, मूल वंश, जाति, यौन, सन्तति, जन्मस्थान, निवास-स्थान अथवा इनमें से किसी भी कारण से किसी सेवा-कार्य को पाने अथवा दिये जाने में, किसी भी सरकारी सेवा-कार्य में अयोग्य नहीं समझा जायेगा।

इतना लिखने के उपरान्त सन् १९५६ में सातवें संशोधन के नाम पर इसमें धारा १६ (३) जोड़ दी। वह धारा इस प्रकार है—

इस धारा में कुछ भी कहा होने पर भी संसद पर किसी श्रेणी अथवा श्रेणियों को सेवा देने अथवा सेवा पर नियुक्ति करने (सरकार के अधीन अथवा किसी स्थानीय निगम के अधीन, उस राज्य अथवा केन्द्रीय क्षेत्र में, वहाँ के रहने वालों के लिए) के लिए कानून बनाने पर प्रतिबन्ध नहीं होगा।

इस उप-धारा को पढ़ने से पता चलेगा कि पूर्ण धारा ही निरर्थक हो गई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस स्थान पर यदि यह लिख दिया जाता कि 'संसद को पूर्ण अधिकार है कि वह किस को सेवा दे और किस को सेवा न दे' तो क्या अन्तर पड़ता था ?

इस प्रकार जितने भी मूलाधिकार हैं, उनमें इस प्रकार की छूटें दी गयी हैं जिनसे दिया गया अधिकार शून्य हो गया है।

इसी कारण हमारा यह मत है कि संवधिान बनाने वाले एक महान् बुद्धिविहीन कार्य कर गये हैं।

लम्बे-लम्बे व्याख्यानों में मूलाधिकार देने की बात कह कर उस अधिकार को शून्य करने में संकोच नहीं किया गया।

: ५ :

मूलाधिकारों का स्रोत

व्यक्ति के मूलाधिकारों का आधार यह है कि मनुष्य में एक जीवात्मा नाम का तत्त्व है जो प्रत्येक मनुष्य में भिन्न-भिन्न है। भिन्न-भिन्न केवल इस अर्थ में नहीं जैसे कमरे में स्टूल और कुर्सियाँ होती हैं, वरन् प्रत्येक शरीर में एक स्वतन्त्र जीवात्मा है जो चेतन है। इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख और प्रयत्न दूसरों से पृथक् रखता है। इस कारण प्रत्येक शरीरी इन गुणों को रखता हुआ अपना पृथक् अस्तित्व रखता है।

वैसे तो पशुओं में भी आत्मा नाम की वस्तु एक से दूसरे में स्वतन्त्र और पृथक् होती है, परन्तु पशुओं में मन और बुद्धि न होने से, उनमें पृथक् इच्छा, द्वेष, सुख, दुख आदि होते हुए भी जीवात्मा उसका प्राकट्य पृथक्-पृथक् नहीं कर सकता।

भेड़ों में भी पृथक्-पृथक् आत्मा होता है, परन्तु मन, बुद्धि के अभाव के कारण इनमें आत्मा की पृथकता की अभिव्यक्ति नहीं हो पाती।

परन्तु मनुष्य में मन तथा बुद्धि के कारण यह अभिव्यक्ति है।

मन, बुद्धि के अधीन ही मनुष्य समाज बनाता है और इसके अधीन ही मनुष्य अपना व्यक्तित्व समाज से पृथक् रखता है।

जब वह समाज में सम्मिलित होता है तो वह अपना शत-प्रतिशत सर्वस्व समाज के हवाले नहीं करता। वह कर सकता भी नहीं। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण इसका समाज से पृथक् अस्तित्व बना रहता है।

जीवात्मा अपने लिंगों को दूसरे जीवात्मा से पृथक् रखता है। सबसे पृथक् रह कर्म करता है और प्रत्येक से पृथक् बुद्धि और मन मिला होने के कारण वह स्वयं ही अपने कर्म का उत्तरदायी होता है।

वह चाहे तो अकेला रह कर कर्म करे और चाहे दस-बीस के साथ मिलकर कर्म करे, फल सबको पृथक्-पृथक् मिलता है। इस कारण जीवात्मा कर्म करने में स्वतन्त्र होने से उतनी सीमा तक ही समाज के अधीन होता है जितने तक वह स्वयं निश्चय करता है।

बुरी संगत में पड़ जाने से कभी जीवात्मा पाप कर्म कर बैठता है। परन्तु उस बुरे कर्म का फल वह अकेला ही भोगता है। यह इस कारण कि उस दुष्ट संगत में, स्वतन्त्र बुद्धि से विचार कर ही वह सम्मिलित होता है।

यही कारण है कि प्रत्येक मनुष्य अपने अस्तित्व को बनाए रखता है। यह उसका व्यक्तित्व होता है।

तनिक कल्पना करिये। भारत में ब्रिटिश राज्य ने भारतीय समाज में कुछ दुर्गुण उत्पन्न किये थे। शराब पीना, जुआ खेलना, पर-स्त्री गमन फिर राजनीति में कुटिल दाँव-पेंच ब्रिटिश राज्य की भारत की समाज को देन थी। इन दुष्कर्मों की प्रेरणा देने वाली युरोपियन शिक्षा थी। परन्तु किसी व्यक्ति से मद्य के नशे में किये दुष्कर्मों का फल इंग्लैण्ड के प्रधानमंत्री को नहीं मिलेगा। यदि मिस्टर बैनर्जी ने मद्य सेवन अथवा पर-स्त्री से बलात्कार किया है तो फल बैनर्जी को ही मिलेगा। शराब पीने की प्रेरणा देने वाले को शराब की प्रेरणा का फल ही मिलेगा, परन्तु शराब के नशे में स्त्री पर बलात्कार का फल बैनर्जी को ही मिलेगा।

यह मानव-जीवन-मीमांसा है और इसके अनुसार ही व्यक्ति समाज में रहता हुआ अपने कर्मों का फल स्वयं भोगता है। समाज में सामाजिक कर्म का फल पृथक् है।

इस स्वतन्त्र कर्म और उसके स्वतन्त्र फल के अनुरूप ही उसकी स्वतन्त्रता है। राजनीतिक शब्दों में यही मूलाधिकार हैं।

समाज सामूहिक रूप में भी कर्म करती है। उसका फल समाज को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामूहिक रूप में मिलता है, परन्तु उन सामूहिक कर्मों में मनुष्य समाज के अधीन होने के अतिरिक्त स्वतन्त्र बुद्धि और जीवात्मा रखने के कारण अपना स्वतन्त्र जीवन भी रखना चाहता है और यत्न करके रखता है। इस स्वतन्त्र जीवन के कार्य को ही मूल-अधिकार का नाम दिया गया है।

विद्वान् लोगों ने समाज की व्यवस्था बनाते हुए यत्न किया और ऐसे कर्मों की सूची बना ली जो जीवात्मा समाज से पृथक् रह कर करता है और उनका स्वयं फल भोगता है।

यह सीमा-रेखा, सामाजिक कर्मों में, इस आधार पर बनी है कि जो कर्म मनुष्य अकेला रह कर करता है और जिस कर्म का फल उस अकेले तक ही सीमित रहता है, वे कर्म उसके निजी हैं और उनमें उसे स्वतंत्रता मिलनी चाहिये। यह उसका मूलाधिकार है।

एक उदाहरण से बात स्पष्ट हो जायेगी।

एक व्यक्ति के पास मिठाई खरीदने के लिए धन है। वह धन उसका अपना है। उसकी इच्छा होती है कि वह रसगुल्ले क्रय कर खाए। इस पर तब तक प्रतिबन्ध नहीं लग सकता जब तक वह दुकान से मूल्य देकर रसगुल्ले लेता है और किसी के मुख से छीनकर नहीं खाता।

रसगुल्ले खरीदना और खाना उसका अधिकार है।

समाज इस पर प्रतिबन्ध नहीं लगा सकता, क्योंकि किसी अन्य के पास मूल्य नहीं और रसगुल्ले खाने की इच्छा वह भी करता है।

हाँ, समाज तब बीच में आयेगा जब दो व्यक्तियों के पास मूल्य हो, दोनों रसगुल्ले खाने के इच्छुक हों, परन्तु दुकानदार के पास दो के खाने के लिए पर्याप्त नहीं हैं। तब दो ग्राहकों में निर्णय के लिए समाज की व्यवस्था हस्तक्षेप करेगी।

इसी प्रकार पुरुष-स्त्री के सम्बन्ध की बात है। एक युवा पुरुष है। वासना तृप्ति के लिए अथवा सन्तान प्राप्ति के लिए उसे स्त्री की इच्छा होती है।

जब तक मनुष्य में सामर्थ्य है और कोई स्त्री उसकी पत्नी बनने के लिए तैयार है, तब तक समाज को उनके सम्बन्धों में हस्तक्षेप करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की आवश्यकता नहीं। परन्तु यदि समाज में स्त्रियों की कमी हो और पुरुषों का बाहुल्य हो और सम्भावना हो कि पुरुष एक-एक स्त्री के लिए परस्पर लड़ पड़ेंगे अथवा स्त्री प्राप्त करने के लिए स्त्री पर बल प्रयोग करेंगे, तब समाज को हस्तक्षेप करने की आवश्यकता है अन्यथा कोई भी समाज के हस्तक्षेप को पसन्द नहीं करेगा।

एक अन्य उदाहरण लिया जा सकता है। सरकार को कुछ क्लर्कों की आवश्यकता है। सरकार निश्चय करती है कि वह इस वर्ष बी० ए० के चोटी के दस उत्तीर्ण विद्यार्थियों को सेवा-कार्य में ले लेगी।

उन चोटी के दस उत्तीर्ण विद्यार्थियों में यदि कोई मुसलमान नहीं और भारतीय समाज में मुसलमान तथा हिन्दू दोनों समुदाय के लोग हैं तब क्या होगा?

यदि एक मुसलमान को, सरकारी नौकरी की योग्यता न होने पर भी नौकरी मिलती है तो यह उन विद्यार्थियों के मूलाधिकारों का हनन होगा, जिनको अपनी योग्यता के आधार पर सेवा में लिया जाना था।

संक्षेप में मूलाधिकार हैं जो मनुष्य अपने कर्म के फलस्वरूप प्राप्त करता है। यदि उसमें राज्य अथवा समाज हस्तक्षेप करता है और अनाधिकारी को अधिकार दिलाता है तो मूलाधिकारों का हनन होता है और व्यक्ति इसको प्राप्त करने का यत्न करेगा।

निष्कर्ष यह है कि व्यक्ति के मूलाधिकार उसके व्यक्तिगत कर्म का फल होते हैं। मनुष्य जो भी कर्म व्यक्तिगत रूप में करता है, उसके फल को प्राप्त करना चाहता है। यह उसका मूलाधिकार है।

वर्तमान युग के समाजवादी यह कहते हैं कि मशीन युग के चलने से व्यक्तिगत प्रयत्न निःशेष हो गया है, इस कारण व्यक्तिगत अधिकार नहीं रहे और मूलाधिकार व्यर्थ की बात है।

समाजवादी कहते हैं कि सरकार एक विश्वविद्यालय चालू करती है। उसमें दो-तीन करोड़ रुपये वार्षिक सरकारी खजाने से व्यय करती है। इस कारण पढ़ाई से जो फल उत्पन्न हुआ है, वह समाज के साँझे प्रयास (धन) का फल है। यदि विश्वविद्यालय से सौ स्नातक एक वर्ष में बने हैं तो सब पर सरकारी धन व्यय हुआ है। इस कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरकार को चाहिये कि उनको काम दे और यदि काम कम हो तो सब में बाँट दे। इस विषय में समाजवादी कहते हैं कि सरकारी काम समाज के भिन्न-भिन्न अंगों में समान रूप से बँटना चाहिये।

समाजवादी, जो जाति की पूर्ण उपज को समाज की सम्पत्ति मानते हैं, वे उसका वितरण भी समाज के हाथ में देना चाहते हैं। इसी कारण समाजवादियों में भाई-भतीजावाद चलता है। परिणामस्वरूप योग्यता आधार न रह कर समाज में भाई-भतीजावाद आधार हो जाता है।

जिस प्रकार किसी मंत्री के परिवार के हित-साधन को भाई-भतीजा-वाद कहते हैं, उसी प्रकार जात-बिरादरी-विशेष में अधिकारों का वित-रण भी भाई-भतीजावाद ही है।

यही कारण है कि जब से पं० जवाहरलाल ने भारत को समाजवादी बनाने की घोषणा की है, तब से देश में व्यक्ति के मूलाधिकार विलीन होने लगे हैं।

इन्दिरा गांधी अपने को सर्वाधिक समाजवादी कहती थीं और सब से अधिक अपने परिवार और अपने सहयोगियों के हितों में उसका हित हो गया।

जवाहरलाल और इन्दिरा गांधी ने जो नागरिकों के मूलाधिकारों पर कुठार चलाया था, वह समाजवादी मनोवृत्ति का परिणाम ही था।

अतएव मूलाधिकार जीवात्मा की स्वतंत्रता के प्रतीक हैं। जो जीवात्मा के अस्तित्व को नहीं मानते, वे ही मूलाधिकारों का हनन करते हैं।

जीवात्मा जिन कार्यों में अपने साथ ही व्यवहार रखता है, उनमें वह स्वतंत्र है। समाज व्यक्ति के केवल उन कार्यों को नियम से संचालित करता है और कर सकता है, जिनमें व्यक्ति किसी दूसरे के अधिकार में हस्तक्षेप करे। ये अधिकार, जैसे भारत के संविधान ने कल्पित किये थे, इस प्रकार थे—

धारा १४—कानून की दृष्टि से भारत के सब नागरिक समान होंगे।

धारा १५—राज्य एक नागरिक और दूसरे नागरिक में मजहब,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मूल वंश, जाति, लिंग, जन्म-स्थान अथवा इनमें से किसी एक कारण से भेद-भाव नहीं करेगा।

सार्वजनिक स्थानों पर जाने के विषय में अथवा सार्वजनिक प्रयोग की वस्तुओं और स्थानों के प्रयोग में भेदभाव सहन नहीं करेगा।

इस धारा में भी अपवाद खड़ा किया गया है। हम समझते हैं कि यह संविधान सभा के बुद्धिविहीन सदस्यों के मस्तिष्क की ही उपज है। अपवाद इस प्रकार हैं—

धारा—१५ की उपधारा (४) —

इस धारा १५ में जो कुछ कहा है, वह किसी भी राज्य की पिछड़ी जातियों की उन्नति के लिये अथवा अछूत जातियों की सहायता के लिये कुछ करने से राज्य को मना नहीं कर सकता।

यह उपधारा सरकार को यह करने की स्वीकृति भी देती है कि किसी ब्राह्मण की लड़की को बलपूर्वक अछूत जाति के लड़के से विवाह दे।

ऐसा अभी नहीं हुआ, यह हम मानते हैं; परन्तु धारा १५ (४) के अन्तर्गत हो सकता है। इसमें यह भी हो सकता है कि किसी सेठ साहूकार की जमीन पर अधिकार कर किसी अछूत को अपना मकान बना लेने की स्वीकृति दे दे।

इस धारा में किसी अपवाद की आवश्यकता नहीं थी। इसका स्पष्ट अभिप्राय है कि किसी के उचित अधिकार किसी पिछड़ी जाति के वर्ग के लिये छीने जा सकते हैं।

पिछड़ी जातियों की सहायता की जा सकती है। वह राज्य की ओर से दान-दक्षिणा के रूप में, बिना संविधान को विकृत किये की जा सकती है।

आज जनता पार्टी ने बिहार और उत्तरप्रदेश में कुछ ऐसा ही करने का यत्न किया है और हम समझते हैं कि जनता पार्टी अपना कफन सी रही है। दीन-दुखियों की सहायता करनी चाहिये, परन्तु संविधान द्वारा किसी दूसरे के अधिकार छीनना महान् पाप है। यह अपना फल लायेगा।

धारा १६—सेवा पाने अथवा पदों पर नियुक्तियाँ करने में सरकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक नागरिक और दूसरे नागरिक में भेदभाव नहीं करेगी। किसी नागरिक को मजहब, मूलवंश, जाति, लिंग, सन्तान और जन्मस्थान के कारण सेवा देने अथवा उसकी नियुक्ति में भेदभाव नहीं होगा।

परन्तु इसमें भी ऊपरिलिखित अपवाद है।

धारा १७—छूआछूत का भाव वर्जित है।

धारा १८—राज्य उपाधियां नहीं देगा।

धारा १९—देश के सब नागरिकों को—

(१) बोलने की स्वतंत्रता होगी;

(२) शान्ति से, बिना अस्त्र-शस्त्र लिये, एकत्रित होने की स्वतंत्रता होगी;

(३) सभाएं और यूनियन बनाने की स्वतंत्रता होगी;

(४) भारत की सीमा में कहीं भी आने-जाने की स्वतंत्रता होगी;

(५) भारत में कहीं भी रहने और बसने की स्वतंत्रता होगी; और

(६) कोई भी व्यवसाय, कार्य, व्यापार अथवा कारोबार करने की स्वतन्त्रता होगी।

इस धारा १९ में एक उपधारा (६) है, जिसके अनुसार भारत का कोई भी नागरिक देश के किसी भी स्थान पर सम्पत्ति खरीद अथवा बेच सकता था।

हमारी वर्तमान 'बुद्धिमान' सरकार ने सम्पत्ति रखने किसी नागरिक का अधिकार नहीं माना। इस कारण वह इस उपधारा को भी नहीं रख सकी। जब सम्पत्ति रखने का अधिकार नहीं तो कहीं रखने और बेचने का भी अधिकार नहीं हो सकता।

इस विषय में हम धारा ३१ पर लिखते समय अपने विचार बतायेंगे। स्वतन्त्रता की इस धारा में भी अपवादों की भरमार है।

धारा २०—जो व्यक्ति किसी कानून का भंग नहीं करेगा, उसे किसी प्रकार का दण्ड नहीं दिया जायेगा। एक अपराध के लिये दो बार दण्ड नहीं दिया जायेगा और अपने ही विरुद्ध किसी को बयान देने पर विवश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं किया जायेगा।

धारा २१—किसी का जीवन और किसी की स्वतन्त्रता बिना कानून के नहीं छीने जायेंगे।

धारा २२—पकड़े हुए व्यक्ति को वंदीगृह में बिना कारण बताये रोका नहीं जायेगा और उसका अधिकार, वकील से राय करने का और मुकद्दमा लड़ने का, बना रहेगा।

पकड़े व्यक्ति को चौबीस घंटे के भीतर समीप के मैजिस्ट्रेट के समक्ष उपस्थित किया जायेगा। इन चौबीस घंटों में वह काल नहीं गिना जायेगा जो उसे मैजिस्ट्रेट के समक्ष ले जाने में लगेगा।

'बुद्धिमानों' की वर्तमान सरकार ने कृपा कर बिना मुकद्दमे और पूछताछ के तीन महीने तक बन्दी रखने के स्थान दो महीने तक बन्दी रखने का नियम स्वीकार करने की 'कृपा' की है।

हमारा यह मत है कि संदिग्ध व्यक्तियों को बिना मुकद्दमे के रोकने की स्वीकृति होनी चाहिये, परन्तु उनके वंदी बनाने के चौबीस घंटे के भीतर उन्हें मैजिस्ट्रेट अथवा किसी बोर्ड के समक्ष उपस्थित कर देना चाहिये। उसे तीन अथवा दो महीने तक बंदीगृह में बिना किसी उचित अधिकारी को बताये रोकने का अधिकार नहीं होना चाहिये। यदि किसी कहे जाने वाले अपराधी को रखना ही है तो चौबीस घंटे में ही सलाहकार बोर्ड (Advisory board) के सामने उपस्थित कर बोर्ड की स्वीकृति ले लेनी चाहिये। इस काम के लिये दो महीने का समय उसके प्रति घोर अन्याय है।

धारा २३—बेगार अथवा मनुष्यों की बिक्री वर्जित है।

धारा २४—अल्प-वयस्क बच्चों को कारखानों में नौकर नहीं रखा जा सकता।

धारा २५—मज़हब रखने की स्वतंत्रता।

यहाँ हम अपने पूर्व कथन की ओर पुनः ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं। ईश्वर को मानना मजहबी बात नहीं है। यह एक वैज्ञानिक तथ्य है।

हाँ, परमात्मा का प्रकाश करने के लिये किसी विशेष गुरु, पीर-पैगम्बर और उसके कथन को मानना मज़हब हो सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसकी स्वतन्त्रता तो ठीक है, परन्तु मज़हब में परमात्मा के अस्तित्व को मानना अथवा न मनना नहीं आता।

आस्तिक्य और नास्तिक्य मज़हब नहीं हैं। इनकी व्याख्या और पूजा-विधि मज़हब हैं।

दूसरे शब्दों में ईश्वर का ना मानना नागरिकता से वर्जित होना चाहिये। हाँ, ईश्वर कैसा है, कहाँ है और उसका रूप-रंग कैसा है, इस विषय में मानने की स्वतन्त्रता सबको हो।

मज़हबी आधार पर न राज्य किसी को विवश कर सकता है और न ही कोई एक मज़हब वाला किसी दूसरे मज़हब वाले को।

धारा २९ अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा के लिये है। यह भी एक अबुद्ध विचार की उपज है जो अंग्रेजों ने इस देश में फैलाया था।

सब मानव एक समान पद और मान रखते हैं, ऐसा मानना चाहिये। बहुमत और अल्पमत का विचार मूर्खों का है। इस विचार ने पिछले स्वराज्य काल के तीस वर्षों को बहुत कलंकित किया है।

धारा ३० अल्पसंख्यकों के अधिकार के सम्बन्ध में है। जब सब नागरिक बराबर हैं तो अल्पमत का प्रश्न ही नहीं रहता।

धारा ३१ पहले इस प्रकार थी—

कोई भी व्यक्ति सम्पत्ति के अधिकार से (कोई कानूनी कारण को छोड़ कर) वंचित नहीं किया जा सकेगा।

यह धारा पहले ही लँगड़ी थी। इसके स्थान पर धारा कुछ इस प्रकार होनी चाहिए थी कि कानूनान्तर्गत अर्जित अथवा उत्तराधिकार में कानून से प्राप्त सम्पत्ति से वंचित नहीं किया जा सकेगा।

इस धारा की सब उपधाराएँ इसी के अन्तर्गत आ जाती हैं।

परन्तु हमारी वर्तमान 'बुद्धिमान' सरकार ने इस धारा को संविधान से निकाल दिया है और कह रही है कि सामान्य कानून से इसका चलन होगा।

समाचार-पत्र और वैचारिक इसकी व्याख्या करने से बच रहे हैं। कुछ एक ने ही इस विषय पर कहा है कि संविधान में सम्पत्ति रखने के अधिकार के बिना यह अधिकार [illegible] कानूनों में [illegible] नहीं [illegible]।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हम समझते हैं कि सब कम्युनिस्ट देशों की भांति भारत में भी सरकार ने सम्पत्ति रखने का अधिकार छीन लिया है और यह अपने इस पाप को छुपाने के लिए यह कह रही है कि इसका अधिकार सामान्य कानून से चलेगा। हमारा विचार है कि यह जनता से छलना खेली जा रही है।

एक सामान्य मनुष्य सम्पत्ति के अर्थ यह समझता है कि जो उसने अपने अर्जन से, मितव्ययता का जीवन चलाते हुए कुछ बचाया है, वह उसकी सम्पत्ति है।

सरकारी नियंत्रण आय पर हो सकता है, परन्तु यह नियंत्रण तो मनुष्य की मितव्ययता पर है। यह अस्वाभाविक है। बेईमानी से उपलब्ध सम्पत्ति चोरी होती है और वह दण्डनीय है। परन्तु मितव्ययता पर प्रतिबन्ध तो मनुष्य के निजी (personal rights) अधिकारों को कम करना है।

उदाहरण के रूप में एक व्यक्ति का एक मकान कनाट प्लेस में है। उसकी भूमि सन् १९३५ में उसने सरकार से १००० रुपये में ९९ वर्ष की लीज़ पर ली थी। भूमि खरीद कर, बीस-तीस हज़ार रुपया व्यय कर उसने मकान बनाया था और एक सौ रुपये महीना भाड़े पर दे दिया था। खरीदने वाले का देहान्त हो चुका है और उसका कोई उत्तराधिकारी अब उस मकान का भाड़ा दो-अढ़ाई सौ रुपये लेता है।

सम्पत्ति के अधिकार शून्य हो जाने पर जब किरायेदार किराया देना बंद कर देता है तो मालिक मकान उस पर दावा करता है कि किरायेदार उसके मकान का भाड़ा नहीं देता।

तब अदालत में प्रश्न उत्पन्न होगा कि किसके मकान का भाड़ा नहीं दिया जा रहा ? सम्पत्ति रखने का अधिकार आज है नहीं। इस कारण किसी को किराया लेने का अधिकार है अथवा नहीं, यह प्रश्न उत्पन्न होगा। यदि इसको लेने का हकदार है तो किस अधिकार से है। वह मकान का मालिक तो रहा नहीं।

सामान्य कानून क्या कहेगा, विचारणीय है और उसका आधार क्या होगा, कोई निश्चय करेगा। कोई भी किस ... किरायेदार को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किराया देने पर विवश करेगा ?

इस प्रकार समाज में मूर्ख सरकार द्वारा अव्यवस्था उत्पन्न करने का प्रबन्ध हो गया है। तब बंदर बाँट की भाँति मालिक और किरायेदार में राज्य स्वामी बन जायेगा।

संविधान से यह अधिकार निकालने की बात कुछ समाजवादियों के मस्तिष्क की उपज है। और हमारे विचार में समाजवादी राजनीतिज्ञ मूर्खों का एक टोला है। वे अपनी बुद्धि को अपनी मान्यताओं के पास बेच चुके हैं।

हिन्दू शास्त्र चोरी करना, झूठ बोलना पाप मानते हैं और समाज के प्रचलित नियमों के अन्तर्गत जो व्यक्ति धन पैदा कर सम्पत्ति निर्माण करता है, वह पापी नहीं। इसकी कोई सीमा भी नहीं। कारण यह कि त्याग और तपस्या के जीवन की भी कोई सीमा नहीं और यह एक व्यक्ति के निजी अधिकारों में है कि वह अपने अर्जित परिश्रम को किस प्रकार व्यय करे।

जनता पार्टी के एक प्रमुख नेता यह कह रहे हैं कि वह धन को एक स्थान पर इकट्ठा होने नहीं देंगे। अर्थात् वे चाहते हैं कि सरकार कानून बनाये कि जब एक सीमा से ऊपर धन किसी के पास हो तो वह उससे छीन लिया जाये।

इस नेता का समर्थन करने वाले देश में कोटि-कोटि व्यक्ति हैं जो न तो कुछ अधिक उपार्जन करने की योग्यता रखते हैं, न ही उनमें अन्याय का भय और तपस्या का भाव है कि अर्जित में से कुछ बचा कर रख सकें। ये सब लोग उस नेता के समर्थन में हाथ खड़ा करने के लिए तैयार हो जाएंगे जो सम्पत्ति पर सीमा बाँधनी चाहता है। परन्तु इसका परिणाम क्या होगा ? विचारणीय है।

: ६ :

धन का स्रोत

धन मनुष्य के परिश्रम का सरकारी सिक्कों में मूल्य है। हम उन लोगों के विषय में नहीं कह रहे जिन्होंने कानून की सीमाओं को तोड़ कर धन संचय किया है अथवा कर रहे हैं। उनके लिए कानून बनाने वाले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और कानून को देश में चालना देने वाले उत्तरदायी हैं। यदि किसी ने कानून भंग कर सम्पत्ति संकलित की है तो वह दोष देश में कानून बनाने वालों अथवा उसके संचालन करने वालों का है। यह विचारणीय नहीं है।

धन के स्रोत दो ही हैं। कच्चा माल और मानव परिश्रम। कच्चे माल में वे सब वस्तुएँ सम्मिलित हैं जो परमात्मा की देन हैं। वे किसी ने निर्माण नहीं कीं।

अनाज के विषय में ही देख लें। खेत की भूमि परमात्मा की देन है। यदि कोई किसान किसी भूमि के टुकड़े पर अनाज पैदा करता है तो ऐसा वह उस भूमि का लगान देकर और सरकारी स्वीकृति प्राप्त कर ही कर सकता है।

प्रायः सभ्य देशों में भूमि और अन्य प्राकृतिक देन की वस्तुएं सरकार के अधीन मानी जाती हैं। इस कारण एक किसान भूमि का लगान देता है। इसका अर्थ यह बनता है कि भूमि प्रकृति की देन होने से सरकार की है और किसान केवल किरायेदार है।

कितनी भूमि एक किसान के पास हो, यह कानून से निश्चय किया जा चुका है। इस कारण शेष रह जाता है भूमि पर परिश्रम। यह परिश्रम किसान करता है और जो कुछ वह पैदा करता है, भूमि का लगान देकर उसके परिश्रम का फल है। स्वाभाविक रूप में वह उस परिश्रम का स्वामी है। यह उसका अपना अर्जित किया हुआ है।

हम यह भी स्वीकार करते हैं कि यदि वह भूमि पर पैदावार करने के लिए किसी अन्य की सहायता लेता है तो उसे उसका उचित परिश्रम देना चाहिए।

इस सबके उपरान्त जो कुछ वह पाता है, वह उसका अपना है। यह धन कहाता है।

अब वह इस अर्जित धन को व्यय करता है। वह पूर्ण अर्जित धन व्यय कर सकता है और मरने पर उसके पास यदि कुछ शेष रहेगा तो उसकी वसीयत कर देगा। यह कम्युनिस्ट देशों में चलता है कि उसका अर्जित धन उसकी मृत्यु तक उसके पास रहे और पीछे सरकार ले ले। परन्तु यह व्यवस्था युक्तियुक्त नहीं है। वह यह धन किसी को दान-दक्षिणा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथवा 'गिफ्ट' के रूप में क्यों नहीं दे सकता ? यह उसकी सम्पत्ति का स्वामित्व है।

सरकार का किसी के संचित धन पर दृष्टि डालने का अभिप्राय यह है कि वह उसे यह प्रेरणा देती है कि वह मितव्ययता का अथवा सरल-सादा जीवन न रखे। साथ ही यदि किसी के पास बुद्धि और सामर्थ्य अधिक होने से उसकी आय अधिक है तो वह अवश्य ही उसे व्यय करे। भले ही शराब पीकर दुराचार में अथवा मूर्खों की भाँति मार्ग में चलता-चलता फेंकता जाये।

हमारा कहने का अभिप्राय यह है कि धन का अर्जन व्यक्तिगत व्यवहार है। यह व्यक्ति का जन्मसिद्ध अधिकार है। इसी प्रकार धन का व्यय करना भी मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है।

ये मूलाधिकार संविधान से निकाल कर वर्तमान सरकार ने महान् अन्याय किया है और जन-जन को धन व्यर्थ गँवाने की प्रेरणा दी है।

आज संसार में धन न केवल एक मूलाधिकार है वरन् यह सब मूलाधिकारों का मूल भी है। एक बार पुनः संविधान में दिये सब मूलाधिकारों पर दृष्टिपात करें तो पता चलेगा कि अन्य मूलाधिकारों का भोग करना भी सम्भव नहीं यदि धन न हो।

अतएव हमारा मत है कि वर्तमान सरकार ने यह कार्य महान् बुद्धि-विहीनता का किया है।

वैसे तो जनता पार्टी जब से सत्तारूढ़ हुई है, पग-पग पर मूर्खता कर रही है, परन्तु सम्पत्ति का अधिकार नागरिकों से छीन कर इसने वह कर्म किया है जिसके समान मूर्खतापूर्ण कार्य अन्य कोई नहीं है।

कलम की चोट से पूर्ण जाति के कर्मों पर सरकार ने अपना अधिकार जमाने का यत्न किया है। हमें भय है कि यह एक कार्य ही इस दल को ले डूबेगा। तब क्या होगा, यह अभी नहीं बताया जा सकता। परन्तु वह भारत देश और इसमें बसे लोगों के लिए एक काला दिन होगा।

कदाचित् उस अन्धकार युग के आने से पूर्व ही देश के बुद्धिमान लोगों को समझ आ जाये !

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

: ७ :

संविधान में अन्य बुद्धिविहीन बातें भी हैं। संसद सर्व अधिकार सम्पन्न संस्था है। यह संविधान की सर्वाधिक अबुद्ध बात है।

हमारे संविधान बनाने वालों ने ब्रिटिश पार्लियामैण्ट की नकल उतारने का यत्न किया है। उन्होंने यह नहीं देखा कि वहाँ जब से संसद का वर्तमान रूप बना है, तब से देश ह्रासोन्मुख हो रहा है।

इंगलैंड का सितारा अस्ताचल की ओर जा रहा है। भारत की वर्तमान दुर्दशा एक बड़ी सीमा तक इसी कारण है।

संसद कानून बनाने वाली संस्था है। यही उस कानून का पालन कराने वाली संस्था है और यह अपने को न्यायपालिका का संचालन करने वाली संस्था भी समझती है।

सर्वप्रथम न्यायाधीशों की नियुक्ति मंत्रिमण्डल के अधीन है। दूसरे, उनके तबादले प्रधानमंत्री के अधीन हैं और तीसरे न्यायाधीशों की उन्नति मंत्रिमण्डल के अधीन है।

तनिक हाईकोर्ट में मुख्य न्यायाधीश अथवा न्यायाधीशों की नियुक्ति के विषय में विचार करें तो पता चलेगा कि राज्य विधान सभा और लोक सभा इसमें बहुत दूर तक हस्तक्षेप करने का अधिकार रखती हैं।

हम समझते हैं कि वर्तमान प्रजातंत्रात्मक पद्धति के राज्यों में सबसे बड़ी खराबी यही है कि ये निर्वाचित सदस्य सर्वेसर्वा हैं, इन पर किसी प्रकार का नियंत्रण नहीं।

राज्य के तीन प्रकार के कार्य मुख्य हैं—

(१) कानून बनाना;

(२) कानून का पालन कराना;

(३) न्यायपालिका।

कानून बनाने के अधिकार को संवैधानिक शक्ति (Legislative Power) कहते हैं। यह उस संस्थान के हाथ में नहीं होनी चाहिए जो प्रबन्ध करने वाली संस्थान् (Executive body) हो। यदि ऐसा होगा तो जब भी किसी कानून के पालन कराने में कठिनाई आयेगी, कानून बदल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया जायेगा। यह आज भारत देश में हो रहा है। यही कारण है कि संसद, विशेष रूप में लोकसभा में दिन-रात झगड़े होते रहते हैं और नये-नये कानून बनाये जा रहे हैं।

यह कुछ ऐसा है जैसा कि नगर के कोतवाल को व्यवस्था के नियम बनाने की भी स्वीकृति दे दी जाये। तब कोतवाल जब भी किसी प्रकार की कठिनाई किसी काम में देखेगा तो तुरन्त एक नया नियम बनाकर उसकी घोषणा कर देगा।

यह व्यवसाय, उद्योग-धंधों, कर्मचारियों के काम और वेतन में और अन्य प्रबन्ध कार्यों में हो रहा है। एक कानून बनता है। उसका पालन नहीं होता अथवा होता है और उसका परिणाम इच्छित नहीं होता तो उस पर संशोधन पेश हो जाता है। यह सर्वथा वही बात है कि कोतवाल प्रबन्ध नहीं कर सकता तो प्रबन्ध के लिए नये नियम बनाने लगता है अथवा यूं कहें तो बात अधिक ठीक होगी—'नाच न जाने आंगन टेढ़ा।' कानून गलत होता है, प्रबन्ध-दोषपूर्ण होता है, जनता निन्दा करने लगती है और नया कानून बना दिया जाता है।

इस समस्या का बुद्धियुक्त उपाय क्या है ? हम समझते हैं कि देश में अथवा राज्यों में तीन-तीन सभाएं हों, जो निम्न प्रकार कार्य करें—

(१) व्यवस्थापक सभा (Legislative body)। यह केवल कानून का गहन ज्ञान रखने वालों की हो और इसमें सदस्य भेजने के अधिकारी पढ़े-लिखे अनुभवी व्यक्ति हों।

(२) प्रबन्धक सभा (Executive body)। यह देश अथवा राज्य का अपने-अपने विषयों में प्रबन्ध करे।

(३) न्याय सभा (Judiciary)। इस सभा में कानून का गम्भीर अनुभव रखने वाले ही जा सकें और इसमें सदस्य चुनने का अधिकार भी एक विशेष स्तर तक पढ़े-लिखों को ही होना चाहिए।

पुलिस, सेना, प्रबन्ध करने वाले अधिकारी, ये सब राष्ट्रपति अथवा राज्यपालों के अधीन हों।

प्रबन्धक समितियां राष्ट्रपति और राज्यपाल को वैसे ही राय दें जैसे आज लोकसभा मंत्रिमण्डल को देती है। राष्ट्रपति न केवल मुख्य प्रबन्धक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar 167947
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिकारी हो वरन् यह तीनों समितियों में समन्वयकर्ता भी हो। यदि कहीं इनमें विवाद खड़ा हो जाये तो वह इनमें सुलह कराने वाला हो।

न्याय-सभा से हमारा अभिप्राय न्यायपालिका नहीं है। यह सभा न्यायालयों में न्यायाधीशों की नियुक्ति तथा उनके कार्य में कठिनाइयों पर विचार करने के लिये हो। हम समझते हैं कि जो कानून बनाने वाले हों वही न्यायाधीशों को नियुक्त करने वाले नहीं होने चाहियें।

हमारी कल्पना यह है कि देश के नागरिक सर्वोपरि अधिकार रखते हैं और उनके अधिकार उनकी योग्यता के अनुसार उनमें प्रतिष्ठित हैं। सर्वसाधारण देश के प्रबन्ध के साथ सीधा सम्बन्धित है। इस कारण संसद की प्रबन्धक सभा देश के सब नागरिकों द्वारा निर्वाचित सभा हो, परन्तु देश की धर्म-सभा (Legislative body) में सदस्य बनने के अधिकारी केवल वे हों जो धर्म (law) का ज्ञान रखते हों और उनको चुनने का अधिकार कम से कम सात वर्ष तक वकालत करने वाले वकीलों को ही हो।

इसी प्रकार न्यायपालिका में केवल वे लोग ही सदस्य हो सकें जो किसी न्यायालय में कार्य कर सेवामुक्त हो चुके हों और इनको चुनने वाले भी सात अथवा इससे भी अधिक काल पुराने विश्वविद्यालयों के स्नातक हों।

यथायोग्य व्यवहार और यथायोग्य अधिकार ही प्रजातंत्र है। प्रजातंत्र भेड़ों का बाड़ा नहीं, जिसमें नेता हाथ में लाठी लेकर अथवा प्रलोभनों द्वारा वोट बटोरते फिरें।

जैसे प्रबन्धक सभा में देश के सब वयस्क नागरिक भाग ले सकते हैं, वैसे ही राष्ट्रपति का निर्वाचन भी वयस्क मतदान से होना चाहिये। केवल राष्ट्रपति पद के लिये कुछ योग्यता, कुछ उसकी सेवाएं निश्चित की जानी चाहियें। प्रबन्धक सभा के सदस्यों के लिये भले ही किसी योग्यता की शर्त न हो।

इस पर भी हम समझते हैं कि इन तीनों प्रकार की सभाओं में चुने जाने के लिये परमात्मा में और प्राणी में आत्मा का विश्वास रखना अनिवार्य शर्त होनी चाहिये।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह व्यवस्था बुद्धिवाद की ओर एक पग होगी। इसमें विद्वानों को अधिक अवसर मिलेगा, देश की दशा को सुधारने का।

यह व्यवस्था लोकमत की विरोधी नहीं है। जनसाधारण का मत उसी बात में, जिसकी उनमें योग्यता है, लिया जाना चाहिये। जिसके जो योग्य नहीं, उसमें उसका मत नहीं होना चाहिये।[1]

---

१. इस विषय का विस्तृत विवेचन लेखक ने अपनी रचना 'प्रजातांत्रिक समाजवाद' में किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुर्थ खण्ड

॥ १ ॥

शिक्षा

शिक्षा और भाषा का वही सम्बन्ध है जो हाथ और दस्ताने (hand and glove) का है। दोनों में सामंजस्य होना चाहिये।

हम पूर्व कण्डिका में यह लिख चुके हैं कि इस देश के संविधान में प्राक्कथन के उपरान्त यह घोषणा होनी चाहिये थी कि देश के ऐक्य और सुदृढ़ता के लिये देश के लड़के-लड़कियों की शिक्षा का प्रबन्ध विद्वानों की एक समिति के अधीन होगा और यह समिति पार्लियामेण्ट से स्वतन्त्र होगी।

इससे हमारा अभिप्राय यह था कि राजनीति-प्रपंच से शिक्षा को स्वतंत्र कर दिया जाये। यह देश के विद्वानों की एक समिति के अधीन हो।

प्रश्न उपस्थित होता है कि यह समिति कौन बनाये? देश में राज्य तो राजनीतिक शक्ति का प्रतीक होता है। यह समिति राज्य की तीनों समाजों के अधिकार क्षेत्र से बाहर हो तो इसे बनाये कौन?

इसके निर्माण पर विचार करने से पूर्व शिक्षा के विषय में दो बातें जाननी आवश्यक हैं। शिक्षा के अन्तर्गत भाषा तो है ही। कारण यह कि भाषा माध्यम है वास्तविक शिक्षा का। इस कारण देश की भाषा का प्रश्न उपस्थित होता है। हमने यह ऊपर बताया है कि भाषा के विषय में कुछ विद्वानों ने यह भ्रम उत्पन्न कर रखा है कि भाषा का लोगों की सभ्यता और संस्कृति से सम्बन्ध है।

यह मिथ्यावाद है। सभ्यता वह व्यवहार है जो सभा समाज में, परिवार में, मुहल्ले अथवा नगर में शान्ति, सुख और प्रसन्नता पूर्वक रहने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में सहायक हो। इसका सम्बन्ध व्यवहार से है। भाषा बोलने अथवा लिखने से इसका सम्बन्ध नहीं। हमारे कहने का अभिप्राय यह है कि भिन्न-भिन्न भाषा बोलने वाले समान व्यवहार अर्थात् समान सभ्यता रखने वाले हो सकते हैं।

इसी प्रकार संस्कृति-संस्कृति में भेदभाव भाषा के आधार पर नहीं होता। उदाहरण के रूप में हिन्दू संस्कृति है परमात्मा, जीवात्मा, कर्म-फल, पुनर्जन्म, सनातन धर्मों को मानना और उनके अनुकूल व्यवहार रखना। कोई भी भाषा बोलने अथवा लिखने वाला हो, ये लक्षण सबमें समान होंगे।

भाषा है परस्पर विचारों के आदान-प्रदान का माध्यम; एक देश के नागरिकों को एवं भूमण्डल के नागरिकों को परस्पर बातचीत करने अथवा विचार बताने में माध्यम।

मानव-कल्याण के हित में हमें कोई ऐसा माध्यम चाहिये कि जिसमें हम एक-दूसरे की बात को समझ-समझा सकें। होना तो यह चाहिये कि भूमण्डल के सब देशों के रहने वालों में, जिन्होंने अपने भाग्य को एक दूसरे से सम्बद्ध कर रखा है, एक सांझी भाषा हो। तभी वे परस्पर सह-चारिता से रह सकेंगे और विचारों का आदान-प्रदान कर सकेंगे।

यह बात कदाचित् वे भी मानते हैं जो अँग्रेजी भाषा को भारत की साँझी भाषा बनाना चाहते हैं। यह तो हम आगे चलकर बतायेंगे कि अँग्रेजी भारत की साँझी भाषा क्यों नहीं होनी चाहिये? यहाँ हम यह बता रहे हैं कि एक देश में ऐसी भाषा की नितान्त आवश्यकता है जिससे विचारों का आदान-प्रदान हो सके।

जब कोई यह कहता है कि बंगाल में बंगला भाषा ही माध्यम हो, वह अनजाने में यह भी कह रहा है कि बंगाल और उत्तर-प्रदेश में विचारों के आदान-प्रदान की आवश्यकता नहीं, अथवा पंजाब और बंगाल वालों में किसी प्रकार के सम्पर्क की आवश्यकता नहीं। बंगाल, उत्तर-प्रदेश और पंजाब तथा भारत के अन्य राज्यों में समन्वय और सम्बन्ध होना परमावश्यक है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

हम समझते हैं कि हमारे इस विचार से इन्कार करने में कोई कारण

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं कि देश में एक सभ्य भाषा की परमावश्यकता है। झगड़ा यही है कि देश में कुछ लोग हैं जो किसी कारण से अँग्रेजी पढ़ गये हैं और वे अँग्रेजी को ही भारत की सम्पर्क भाषा बनना चाहते हैं।

उन्होंने ही बंगला, तमिल अथवा तेलुगू भाषा-भाषियों का झगड़ा उत्पन्न कर रखा है कि जिससे अँग्रेजी सम्पर्क भाषा बनी रहे। तमिल, बंगला इत्यादि को वे शतरंज का मोहरा बनाये हुए हैं। वे यह तो जानते हैं कि बंगला इत्यादि राजकीय भाषाएँ हैं परन्तु भारत की सम्पर्क भाषा नहीं बन सकतीं। इससे वे हिन्दी को पराजित करने के लिए बंगला, तमिल इत्यादि सभ्यताओं और संस्कृति की कूक लगा रहे हैं।

तमिल, बंगला इत्यादि सभ्यताएँ यदि पृथक्-पृथक् हैं तो भी इनका भाषा से सम्बन्ध नहीं है। ये सभ्यताएँ हिन्दी सीख लेने पर भी बनी रहेंगी।

अँग्रेजी को सामने रखने में कारण यह नहीं कि देश के अधिकांश प्राणी इस भाषा को समझ सकते हैं, न ही इसके पक्ष में यह बात है कि निकट भविष्य में यह भारत में बहुसंख्यकों की भाषा होने वाली है। यह केवल इसलिए कि अँग्रेजी काल से यह स्कूलों में पढ़ाई जाती है और बलपूर्वक दफ्तरों और व्यवसायों में इसका चलन किया गया है।

इस पर दुर्भाग्य यह है कि जब से देश में स्वराज्य स्थापित हुआ है राज्यों की सरकारें एवं केन्द्रीय सरकार सिर तोड़ यत्न करती रही हैं कि अँग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बना रखा जाये।

देश के जितने भी विश्वविद्यालय हैं, उनकी शिक्षा का माध्यम अँग्रेजी बना हुआ है। यह अँग्रेजी काल से चला जाता है और सरकार ने इसे बदलने का यत्न नहीं किया। सरकार के अनेक अबुद्ध कार्यों में यह सबसे बड़ा अबुद्ध कार्य है कि सरकार ने देश के बच्चों की शिक्षा पर अपना एकाधिकार बनाकर उसका माध्यम अँग्रेजी बना रखा है।

सरकार को भाषा में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। यह राजकीय कार्यों में नहीं कि राज्य शिक्षा को अपने हाथ में ले और फिर उसे अपने हाथ में रखने के लिए यह विधान कर दे कि उसके अधीन शिक्षा केन्द्रों से पढ़े हुए ही पढ़े-लिखे माने जायें तथा अन्य शिक्षा केन्द्रों से शिक्षा प्राप्त करने वाले, यदि कोई है, तो अशिक्षित है। ये दोनों कार्य सरकार के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिकार क्षेत्र से बाहर हैं और देश की कोटि-कोटि जनता को अपार हानि पहुंचाने वाले हैं।

सरकार, विशेष रूप में केन्द्र में और उत्तरी भारत के राज्यों की सरकारें हिन्दी के पक्ष की बातें करती हैं परन्तु पिछले तीस वर्षों में एक भी विश्वविद्यालय ऐसा चालू नहीं कर सकीं जिसमें शिक्षा का माध्यम हिन्दी हो और फिर उस विश्वविद्यालय के स्नातकों को दूसरे विश्वविद्यालयों पर उपमा दे सकें। इसका अभिप्राय हम यह समझते हैं कि या तो इन सरकारों के विधायक महामूर्ख हैं अथवा धूर्त हैं (either they are fools or knaves)।

हमें यह देख हंसी आती है कि आज भारत देश का राष्ट्रपति वह व्यक्ति बना हुआ है जो किसी समय देश के सरकारी कार्यालय में, संविधान की धारा के अनुकूल भाषा का चलन होने पर भी, भारत के मंत्रि-मण्डल से त्यागपत्र दे, भारत सरकार के विरुद्ध आन्दोलन करने दक्षिण को भाग गया था। उसके लिए पाकिस्तान का देश पर आक्रमण करना इतना भयंकर कार्य नहीं था, जितना मन्त्रि-मण्डल का संविधान को पालन करते हुए सरकारी कार्यालय में हिन्दी का चलन कराना। यह प्रकट करता है कि हमारी वर्तमान सरकार कितनी 'बुद्धिमानों' की है।

क्या राष्ट्रपति महोदय का यह विचार कि देश की सम्पर्क भाषा अँग्रेज़ी ही हो सकती है, अब भी है? हम समझते हैं कि है।

: २ :

भाषा का उपयोग

भाषा के दो उपयोग हैं। एक यह कि जब दो अथवा अधिक मनुष्य मिलते हैं तो कोई माध्यम होना चाहिए जिससे एक दूसरे को अपने मन के भाव अथवा अनुभवों को बता सकें। इसका दूसरा उपयोग तब होता है जब हम अपने विचार और अनुभव अपने स्मरण रखने के लिए तथा भविष्य में आने वाले मनुष्यों के लिए सुरक्षित रखना चाहते हैं। इसके लिए बोली और लिपि दोनों का आविष्कार किया गया। इन दोनों के संयोग को भाषा कहते हैं। शब्द और लिपि दोनों के ही सहयोग से हम अपने विचार दूसरों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को बता सकते हैं। वे दूसरे समकालीन भी हो सकते हैं और भविष्यमें उत्पन्न होने वाले भी हो सकते हैं।

इसी कारण भाषा को ज्ञान का वाहन कहा जाता है।

यह मनुष्य ने कैसे अनुभव किया और इसका कैसे आविष्कार किया, इस विषय मे विभिन्न मत हैं। मुख्य रूप में दो मत हैं। एक यूरोपियन विद्वानों का है। वह यह कि मनुष्य का आविर्भाव पशु से हुआ है और पशु की मैं-मैं ही लाखों वर्ष में भाषा के रूप में विकसित हुई है। इसी विचार के साथ यह बात माननी स्वाभाविक हो जाती है कि काल व्यतीत होने के साथ-साथ भाषा सबल और सशक्त होती जानी चाहिए।

दूसरा विचार है प्राचीन भारतीय विद्वानों का। वे मानते हैं कि मनुष्य इसी रूप में उत्पन्न हुआ था, जिसमें आज है। यदि मनुष्य में कुछ परिवर्तन हुआ है तो यह उसकी मानसिक, बौद्धिक और शारीरिक सामर्थ्य में ह्रास की ओर ही है।

इस विचार के लोग यह मानते हैं कि भाषा का आविष्कार उन मनुष्यों ने ही किया है जो आदि युग में अमैथुनीय ढंग से पैदा हुए थे। क्योंकि आदि मानव वर्तमान से अधिक सबल था, इस कारण जो भाषा उसने आविष्कृत की थी, वह आज की सब भाषाओं से अधिक सबल और सशक्त थी। इस विचार के लोग यह भी मानते हैं कि आदि मनुष्य ईश्वर के सामर्थ्य से ही उत्पन्न हुआ था। इस कारण आदि भाषा भी ईश्वर की ही देन है।

यहाँ हम इन दोनों मतों पर अपने विचार संक्षेप में लिखेंगे। यह इसलिए कि इस विवेचना का प्रभाव इस निर्णय लेने पर होगा कि भारतवासी किस भाषा को अपनायें। यूरोपियन विद्वानों, उनके शिष्यों और अन्य देशवासियों का यह विचार है कि मनुष्य एक वन पशु का विकसित रूप है। इस विचार को विकासवाद कहते हैं।

हम इस विचार को अवैज्ञानिक मानते हैं। वह इस प्रकार कि एक प्राणी में शुक्राणु और डिम्ब के द्वारा जो जीवन ले जाने और ग्रहण करने वाले जीव-कोषाणु होते हैं, उनमें 'क्रोमोजोम्ज' की संख्या बराबर होती है। क्रोमोजोम्ज में जीन की संख्या माता-पिता के बीज कोषाणुओंके

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीन की संख्या के समान ही होती है। जब भी इसमें क्रोमोजोम्ज़ अथवा जीन की संख्या में किसी भी कारण से हेर-फेर होता है तो सन्तान जीवित नहीं रहती। इससे एक ही परिणाम निकलता है कि एक प्रकार का जन्तु अपनी ही प्रकार की सन्तान उत्पन्न कर सकता है।

यह विकासवादियों को सिद्ध करना चाहिये कि कैसे जीव कोषाणुओं में जीन बदलते हैं। कुछ भी कहें, जो कुछ प्रत्यक्ष रूप में दिखाई देता है, वह यह है कि न तो निर्जीव से कहीं जीव उत्पन्न होता देखा जाता है, न ही एक प्रकार का जन्तु किसी दूसरी प्रकार का जन्तु उत्पन्न कर सकता है।

अतः जहाँ तक विकासवाद का सम्बन्ध है यह एक असिद्ध विचार है।

भारतीय मत है कि आदि मनुष्य और आदि भाषा अति श्रेष्ठ थी। इसका एक उप-सिद्धान्त यह है कि भाषा जो आरम्भ में बनी, वह अति अर्थयुक्त थी। प्रमाणों से भी यही सिद्ध होता है कि वह भाषा वर्तमान भाषाओं से श्रेष्ठ थी।

इस पर यह प्रश्न उपस्थित होता है कि श्रेष्ठ भाषा किसे कहते हैं ? हमने बताया है कि भाषा के दो अंग हैं। बोली और लिपि। दोनों के विषय में पृथक्-पृथक् विवेचना करेंगे।

बोलने वाली भाषा शब्दों से बनती है। शब्द अर्थ से युक्त हों तो भाषा बन जाती है। अतः बोलने वाली भाषा अर्थयुक्त वाक्य हैं। मनुष्य जब वर्तमान जैसा सामर्थ्य वाला बना तो वह वाक्य बोलने लगा था। अतः बोली तब हुई जब बोलने के शब्दों के अर्थ नियत किये गए।

यदि यह मानें कि मनुष्य ने अकारण ही (by accident) अर्थ नियत कर दिये तो यह मानना पड़ेगा कि मनुष्य की पहली भाषा बहुत ही घटिया रही होगी और उसमें उन्नति करते-करते नवीन भाषाएँ अधिक और अधिक उन्नत होती रही होंगी। यह वस्तुस्थिति के विपरीत है।

भारतवर्ष का ही उदाहरण लें। वस्तुस्थिति यह है कि बंगला, तमिल, गुजराती, कन्नड़, पंजाबी और राजस्थानी इत्यादि बोली जाने वाली वर्तमान काल की भाषाएं अपूर्ण और भावों को पूर्णतया व्यक्त करने के अयोग्य हैं। इन सब भाषाओं की अपेक्षा मध्यकालीन संस्कृत अधिक सशक्त है। इस मध्यकालीन संस्कृत भाषा से रामायण और महाभारत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की भाषा अधिक सबल है। यदि महाभारत इत्यादि ग्रन्थों की भाषा की तुलना वेद भाषा से करें तो वेद भाषा उससे अधिक सुन्दर, मधुर और भावपूर्ण प्रतीत होगी।

इसमें एक ही साक्षी पर्याप्त होगी। मैक्समूल्लर पाश्चात्य भाषा विज्ञान के ज्ञाताओं में मान रखता है। वह लिखता है—They (modern writers) have reduced the rich and powerful idioms of the poets of Vedas to the megre and inferior jirgon of the modern sepoy.

अर्थ हैं—वेद मंत्रों के सबल और अर्थ युक्त कथनों को वर्तमान लेखकों ने अशुद्ध संकुचित गंवारों के वाक्य बना दिया है।

S.L. Vol. I P. 36 उद्धृत पं० भगवद्दत्त
द्वारा 'भाषा विज्ञान' में पृ० २५ पर

यह साक्षी एक यूरोपियन लेखक की है। अन्यथा हम प्रमाण पर प्रमाण दे सकते हैं जिनसे वेद भाषा की सरलता, सरसता और सार्थकता सिद्ध की जा सकती है।

यह सिद्ध करना अति सुगम है कि वेद भाषा प्राचीन संस्कृत से सबल थी और प्राचीन संस्कृत प्राकृत भाषा से तथा प्राकृत वर्तमान काल की पंजाबी, तमिल इत्यादि भाषाओं से सशक्त थी।

अतः यह कहना कि भाषा की उन्नति हुई है, अप्रमाणिक कथन है।

परन्तु कुछ कूप-मण्डूक अवनति को उन्नति मानते हैं। मे चरित्र-हीनता को चरित्र की श्रेष्ठता मानते हैं। इसी प्रकार भाषा के कुछ कथित विद्वान् यह मानते हैं कि भाषा की सरलता उन्नति की सूचक है। सर-लता से उनका अभिप्राय है जो बिना किसी प्रकार के प्रयत्न अथवा न्यून से न्यून प्रयत्न के मुख से निकल सके।

यह भाषा की श्रेष्ठता नहीं। यह तो मनुष्य की इन्द्रियों की सामर्थ्य के ह्रास की सूचक है। भाषा में कुछ विशेष प्रयत्न से बोले जाने वाले शब्दों का लोप भाषा की उन्नति नहीं वरन् मनुष्य की बढ़ रही दुर्बलता को प्रकट करता है।

भाषा की श्रेष्ठता भावों को सुगमता से व्यक्त करने की सामर्थ्य है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भावों को व्यक्त करने की सामर्थ्य को ही हम भाषा की शक्ति मानते हैं। यह वैदिक संस्कृत में सर्वश्रेष्ठ है। हम आगे चलकर इसी खण्ड में कुछ वेदमंत्रों के भाव व्यक्त करने की सामर्थ्य के उदाहरण प्रस्तुत करेंगे।

यहाँ हमारा केवल मात्र इतना बताने से प्रयोजन है कि भाषा काल व्यतीत होने के साथ-साथ ह्रास को प्राप्त हो रही है और उसके साथ ही शब्दों के बोलने में कमी हो रही है। यह भाषा में ह्रास मनुष्य की सामर्थ्य में ह्रास और आलस्य तथा प्रमाद के कारण है।

परन्तु लिपि की कथा दूसरी है। सबसे प्राचीन लिपि जो आजकल मिलती है, ब्राह्मी लिपि है। ब्राह्मी लिपि से पहले चित्र लिपि के चिह्न मिलते हैं। इसे अंग्रेजी में heiroglyph कहते हैं। जैसा महेन्द्रजोदड़ों में मिली हैं। ब्राह्मी लिपि इससे उन्नत है। ब्राह्मी लिपि से उन्नत देवनागरी लिपि है।

चीन में चित्र लिपि में भी उन्नति हुई है और युरोपियन भाषाओं की लिपि देवनागरी लिपि से बिगड़ कर ह्रास को प्राप्त हुई है।

अरबी, फारसी इत्यादि सैमिटिक भाषा ब्राह्मी से बिगड़ी लिपियां हैं। देवनागरी निश्चित ही ब्राह्मी से उन्नत लिपि है। कहने का अभिप्राय यह है कि जो गति भाषा की है अर्थात् श्रेष्ठता से निकृष्टता की ओर, वह लिपि की नहीं है। लिपि में अनियमित गति का दर्शन हुआ है।

इससे हम यह परिणाम निकालते हैं कि भाषा का आरम्भ किसी अति विद्वान् ने किया था और लिपि का आरम्भ किसी हीन बुद्धि मनुष्य ने किया था। भाषा में ह्रास हुआ है। और लिपि में कहीं उन्नति और कहीं ह्रास। हमारा मत है कि देवनागरी लिपि इस समय भूमण्डल की सब लिपियों से सर्वश्रेष्ठ लिपि है।

यह इस कारण हुआ क्योंकि लिपि की आवश्यकता सर्वप्रथम उनको पड़ी थी जो दुर्बल स्मृति रखते थे। लिपि भूल जाने से बचने का साधन है। इस कारण प्रारम्भ की लिपि घटिया थी। पीछे यह विद्वानों के द्वारा उन्नत होती गई और हीन बुद्धि वाले इसे बिगाड़ते रहे।

जहाँ अंग्रेजी में केवल पाँच पूर्ण स्वर ए० इ० आई० ओ० यू० हैं और दो आधे स्वर W और Y हैं, वहाँ देवनागरी लिपि में बारह पूर्ण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वर हैं और चार अधूरे स्वर। पूर्ण स्वर हैं—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ऐ, ओ, औ। अधूरे स्वर हैं—श, ष, स ह। व्यंजनों में भी पच्चीस मुख्य और स्पष्ट व्यंजन हैं और आठ संयुक्त व्यंजन हैं।

संयुक्त व्यंजन के अतिरिक्त भी सब व्यंजन परस्पर संयुक्त किये जा सकते हैं। ये आठों संयुक्त व्यंजन हैं—य, र, ल, व, श, ष, स, ह। अधिक प्रयोग में आने के कारण इनके पृथक् और स्थाई चिह्न बन गये हैं।

इस प्रकार देवनागरी लिपि में सैकड़ों प्रकार की ध्वनियों को अंकित करने का प्रबन्ध किया गया है। भूमण्डल में प्रचलित कोई भी लिपि देवनागरी की बराबरी नहीं कर सकती।

इसकी एक विशेषता यह भी है कि इसको समझ लेना अति सुगम है। कारण यह कि इसका क्रम सर्वथा स्वाभाविक और वैज्ञानिक ढंग से नियत किया गया है।

अत: वैदिक भाषा और देवनागरी लिपि इस समय भूमण्डल की सब भाषाओं से श्रेष्ठ है और सौभाग्य से यह भारत में विद्यमान है। इसके पढ़ाने वाले और इस भाषा और लिपि को सीखे हुए करोड़ों की संख्या में भारत में मिलते हैं।

देश का दुर्भाग्य यह हुआ है जब देश में तकनीकी विकास (technical development) होने लगा तो यहाँ विदेशी राज्य था, जिसने बल, छल और प्रलोभनों से संस्कृत भाषा और देवनागरी लिपि को धकेल कर दीवार के साथ कर दिया था।

पीछे जब स्वराज्य मिला तो दुर्भाग्य से राष्ट्र का कार्य उन बुद्धि-विहीनों के हाथ में चला गया जो मैकाले के षड्यंत्र से बुद्धि खो चुके थे। उनको अंग्रेजी भाषा और रोमन लिपि पसन्द थी।

तब वे पूर्ण देश से छलना खेलने लगे। यह कहते हुए कि हिन्दी देश की भाषा होगी, अंग्रेजी भाषा को वे अधिमान देते रहे।

इस समय संस्कृत-निष्ठ हिन्दी ही वेद भाषा के सर्वथा समीप है और यदि देश ने इनको अर्थात् हिन्दी और देवनागरी लिपि को स्वीकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया होता तो अब तक हम वेद की संस्कृत भाषा और उसकी लिपि (देवनागरी) की ओर पर्याप्त प्रगति कर चुके होते।

: ३ :

वेद मंत्र

ऋग्वेद का प्रथम मंत्र इस प्रकार है—

अग्निम् इळे पुरः हितम् यज्ञस्य देवम् ऋत्विजम्।
होतारम् रत्न-धातमम्॥ —ऋ० १-१-१

अर्थ हैं—हे अग्नि ! मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ।

स्तुति का अर्थ है उसके, जिसकी स्तुति की जा रही है, गुण, कर्म और स्वभाव को बार-बार कहना। स्तुति का अर्थ निरर्थक प्रशंसा नहीं। अतः वेद के प्रथम मण्डल के प्रथम मंत्र में ही अग्नि की स्तुति अर्थात् इसके गुण, कर्म, स्वभाव का स्मरण किया गया है। अग्नि का एक गुण इस मंत्र में सबसे पहले वर्णन किया है।

'यज्ञस्य पुरः हितम्'। यह अग्नि यज्ञ के पहले हित-कार्य करने वाली थी। यज्ञ से अभिप्राय है सृष्टि-रचना। यह एक अन्य स्थान पर कहा है कि यज्ञ सांझे कल्याण के कार्य को कहते हैं। यह यज्ञ अग्नि ने आरम्भ किया था। कैसे किया था, यह यहाँ इस मंत्र में नहीं बताया। यहाँ कहा है यज्ञ का ऋत्विक् परमात्मा था।

जैसे देव-यज्ञ अग्नि प्रदीप्त करने से आरम्भ होता है, परन्तु अग्नि प्रदीप्त करने वाला ऋत्विक् यज्ञ करने वाला होता है, इसी प्रकार अग्नि से आरम्भ हुए सृष्टि-रचना के यज्ञ का ऋत्विक् परमात्मा था। उसने ही अग्नि प्रदीप्त की थी। वही इस यज्ञ में आहुतियाँ देने वाला है।

इसका अभिप्राय है कि जब अग्नि प्रदीप्त हुई तो होता (जैसे देव यज्ञ में आहुतियाँ देता है, वैसे ही) देव (परमात्मा) अग्नि में आहुतियाँ देने लगा। ये आहुतियाँ प्रकृति के परमाणुओं की थीं। अधिक और अधिक परमाणु इस यज्ञ में होम किये जाने लगे।

यह यज्ञ रत्न (धन वैभव) देने वाला है। अर्थात् जब सृष्टि-रचना हो गयी और जीवात्मा इस सृष्टि का भोग करने लगे तो विविध प्रकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के पदार्थ इसे भोग करने को मिले।

एक अन्य मंत्र इस प्रकार है—

यत् आक्रन्दः प्रथमम् जायमान उत्-यत् समुद्रात उत वा पुरीषात्।
श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उप-स्तुत्यम् महि जातम् ते अर्वन्॥

ऋ० १-१६३-१

अर्थ—जब घोर नाद करता हुआ सबसे पहले वह अर्वन् उत्पन्न हुआ और ऊपर अन्तरिक्ष में श्येन के पंखों के और हिरण की बाहों के समान (भागता हुआ) उठा तो उसने स्तुति के योग्य कार्य किया, महि (महान्) पैदा किया।

यहाँ अर्वन् वही अग्नि है जो ऊपर के मंत्र में यज्ञ के लिये परमात्मा ने प्रदीप्त की थी। यह कहा है कि वह अग्नि् अर्वन् (अश्व) की भाँति श्येन पंखों से फड़फड़ाती हुई और हिरण की टाँगों की भाँति खटखटाती शोर मचाती हुई उत्पन्न हुई। इस अग्नि ने स्तुति के योग्य कार्य किया। वह यह कि महत् उत्फन्न हो गये।

परमाणुओं की आहुति अग्नि में देने से महत् पहले उत्पन्न हुआ। सृष्टि-रचना कर्म का यह परिणाम है। प्रकृतेर्महान्। (सां० द० १-६१)

इन मंत्रों में पद कितने सरल और सार्थक हैं। एक और मंत्र इस प्रकार है—

तम आसीत् तमसा गूळम् अग्रे अप्रकेतम् सलिलम् सर्वम् इदम्।
तुच्छयेन अभु अपिहितम् यत् आसीत तपस्यः तत् महिना जायत एकम्॥

—ऋ० १०-१२९-३

अर्थ हैं—अन्धकार था (यह उस समय की अवस्था का वर्णन है जब अभी सृष्टि-यज्ञ में अग्नि प्रदीप्त नहीं हुआ था अथवा जब अर्वन् घोर शब्द करता हुआ अन्तरिक्ष में भाग-दौड़ नहीं कर रहा था) गूढ़ अन्धकार से कुछ न जानने योग्य था जो सलिल (जल की भाँति बह जाने वाला) था।

वह बहुत सूक्ष्म था, व्यापक था, सब ओर छाया हुआ था। तब उसमें एक महान् प्रभाव उत्पन्न करने वाला (तेज-अर्वन अथवा अग्नि) उत्पन्न हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीनों मंत्र भिन्न-भिन्न शब्दों में एक ही घटना का वर्णन करते हैं। इस विषय का एक अन्य मंत्र है—

> यत् वाक् वदन्ती अविचेतनानि राष्ट्रीं देवानां निषसाद मन्द्रा।
> चतस्र ऊर्जं दुदुहे पयांसि क्व स्विदस्याः परमम् जगाम॥
>
> —ऋ० ८-१००-१०

अर्थ—जब अज्ञात अर्थों वाली वाणी जन साधारण में बोली जाने लगी तो लोग बहुत प्रसन्न हुए। तब चारों ओर से ऊर्जा (शक्ति) बहने लगी और लोग खाने-पीने लगे। यह सब चमत्कार कहां से आया और बहुत दूर-दूर तक फैल गया। (अभिप्राय यह है कि ऊर्जा जिसे ऊपर एक मंत्र में अग्नि कहा है, वह चारों ओर से दूध दोहने की भांति पी जाने लगी)।

एक अन्य मंत्र है—

> देवीं वाचम् अजनयन्त देवाः स्तां विश्व रूपाः पशवो वदन्ति।
> सा नो मन्द्रा इषं ऊर्ज धेनुः वाक् अस्मान् उप सुष्टुता उत एतु॥
>
> —ऋ० ८-१२६-११

अर्थ हैं—दिव्य वाणी प्रकट करते हैं विद्वान् लोग और संसार के सब प्राणी बोलने लगते हैं। वह हमें हर्ष देने वाली ऊर्जा ऋषियों द्वारा गाय दुहने की भाँति हमारी सेवा के लिये प्राप्त हो।

यहां ये मंत्र और उनके अर्थ देने का प्रयोजन यह है कि पाठकों को पता चले कि वेद भाषा कितनी सरल, सुबोध और सशक्त है। गूढ़ से गूढ़ विषय को अति सरलता से प्रकट करने की सामर्थ्य रखती है।

इस भाषा तक पहुँचने का उपाय हिन्दी भाषा और देवनागरी लिपि ही है।

परन्तु राज्य के 'महापण्डितों' द्वारा इसकी अवहेलना की जा रही है। इसमें कारण है। वह यह कि राज्य जाति की शिक्षा के सर्वथा अयोग्य है। शिक्षा देना अधिकार है विद्वान् व्यक्तियों का और राज्य है प्रजातंत्र से चुने हुओं के मत से निर्मित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

: ४ :

शिक्षा के अंग

मानव में दो तत्त्व हैं, शरीर और आत्मा। अतएव शिक्षा के भी दो अंग हैं। एक अंग है, इन्द्रियों को शिक्षित करने के लिये और दूसरा अंग है, जिसका सीधा सम्बन्ध आत्मा से है।

शिक्षा की सहायता के लिये दो साधन हैं मन और बुद्धि। बुद्धि और मन तो सांझे साधन हैं इन्द्रियां सम्बन्धी व्यवहार ग्रहण करने वाला और आत्मा सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त करने वाला। इस कारण मन, बुद्धि की श्रेष्ठता तो दोनों प्रकार की शिक्षा के लिये आवश्यक है। परन्तु शिक्षा इन्द्रियों और जीवात्मा के लिये पृथक्-पृथक् हैं।

जीवात्मा एक अनादि अक्षर और अव्यय तत्त्व है। यह शरीर के नष्ट हो जाने के उपरान्त भी रहता है। यह कर्मों का कर्ता और उसके फल का भोक्ता है। पूर्वजन्म के कर्मों का फल इस जन्म में और इस जन्म के कर्मों का फल अगले जन्म में भोगने वाला। इसके अतिरिक्त जीवात्मा कर्म करने के बिना नहीं रह सकता। इस सबका ज्ञान, इसका मन और बुद्धि पर भली-भांति अंकित करना और फिर उसके अनुसार जीवात्मा की इच्छा और प्रयत्न का स्वभाव डालना आध्यात्मिक शिक्षा कहाती है।

किसी वस्तु के निर्माण में प्रक्रिया जानना और उस प्रक्रिया को करना, यह तकनीकी शिक्षा अथवा इन्द्रियों की शिक्षा से होता है।

इस भेद को समझाने के लिये एक दो उदाहरण दे दें तो अधिक ठीक होगा।

एक शिशु पैदा होता है। उसके उत्पन्न होते ही उसके पालन के साधन उन्नत होने लगते हैं। यह क्यों है ? इसका ज्ञान अध्यात्म विद्या है। एक व्यक्ति श्रेष्ठ बुद्धि का स्वामी होता है। यद्यपि उसके माता-पिता के घर पर अधिक पौष्टिक भोजन नहीं मिलता। दूसरा व्यक्ति एक सम्पन्न परिवार में उत्पन्न होने पर भी और सब प्रकार के साधन उपलब्ध होने पर भी मोटी बुद्धि अथवा दुर्बल इन्द्रिय और मन रखता है। इस सब का कारण जानना, समझना और उसके अनुरूप व्यवहार करना अध्यात्म शिक्षा कही जाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अध्यात्म विद्या को ब्रह्म विद्या भी कहते हैं और यह माना जाता है कि इस संसार में ब्रह्म तीन हैं। एक सर्वज्ञ सर्वान्तर्यामी, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक तत्त्व है। इसे परमात्मा कहते हैं। एक अल्पज्ञ, दुर्बल, परन्तु अनादि और अक्षर है और शरीर पर शासन करता है। यह जीवात्मा कहाता है। यह भी ब्रह्म है।

एक इस दूसरे के भोग की सामग्री के रूप में प्रयोग होता है। इसका मूल रूप भी आदि और अक्षर है। इसे भी ब्रह्म कहते हैं। इस विषय में एक उपनिषद् वाक्य है—

ज्ञाज्ञौ द्वावजावीश नीशा—
वजा ह्येका भोक्तृभोग्यार्थयुक्ता।
अनन्तश्चात्मा विश्वरूपो ह्यकर्ता
त्रयं यदा विन्दते ब्रह्ममेतत्॥

—श्वे० उप० १-९

अर्थ—एक ज्ञानवान्, दूसरा अज्ञानी; एक सर्वशक्तिमान्, दूसरा अशक्त; दो अजर हैं। एक अन्य अजर है। वह भोग किये जाने के योग्य है।

अनन्त है वह आत्मा जो विश्व का रूप है और अकर्ता है। इन तीनों को जो ब्रह्म रूप जानता है, वह ही ज्ञानी है।

इससे हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि इन तीन तत्त्वों के ज्ञान को ब्रह्म ज्ञान कहते हैं और यही अध्यात्म विद्या है। इसको सिखाना अध्यात्म शिक्षा है।

प्रकृति का मूल रूप तो ब्रह्म है। यह इस कारण कि उस रूप में प्रकृति भी अनादि और अक्षर है। वैसी ही जैसे परमात्मा तथा जीवात्मा अनादि और अक्षर हैं।

प्रकृति परिणामी है अर्थात् इसके दो रूप हैं। एक कृत्रिम है। यह रूप अविनाशी नहीं। इस रूप में यह संसार के भिन्न-भिन्न पदार्थों में दिखाई देती है। प्रकृति का यह रूप ब्रह्म नहीं है। अतः इस रूप की शिक्षा अध्यात्म विद्या नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस सम्बन्ध में भी एक वेद मंत्र है—

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभय सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ॥

—यजु:० ४०-४१

अर्थ—विद्या (उन वस्तुओं का ज्ञान जो सदा विद्यमान रहने वाली हैं) और अविद्या (उन वस्तुओं का ज्ञान जो विद्यमान नहीं रहतीं) दोनों का ज्ञान होना चाहिये। अविद्या से इस संसार को सुखपूर्वक पार किया जा सकता है और विद्या से मृत्यु पर विजय प्राप्त होती है।

इस पूर्ण वक्तव्य का निष्कर्ष यह है कि दोनों प्रकार की शिक्षा मिलनी चाहिये। इन दोनों प्रकार की शिक्षा को वर्तमान परिभाषा में कहें तो इस प्रकार होगा। एक वह शिक्षा जिससे संसार में सुखपूर्वक रहा जा सके और दूसरी वह शिक्षा जिससे इस संसार से ऊपर उठने के साधन प्राप्त हो सकें।

आज भारत में अविद्या की शिक्षा यथासम्भव दी जाती है। यह भी पर्याप्त नहीं। क्योंकि इस शिक्षा का आधार भी तो मन और बुद्धि हैं। यदि मन और बुद्धि उन्नत नहीं होंगे तो अविद्या भी पूर्ण रूप से नहीं दी जा सकेगी।

दूसरी प्रकार की शिक्षा, जिसे वेद में विद्या कहा है, उसका तो भारत की वर्तमान शिक्षा-पद्धति में लेश मात्र भी स्थान नहीं है।

वर्तमान सरकार अपने को सेक्यूलर कहने से दूसरी प्रकार की शिक्षा देने से डरती है। वह विचार करती है कि यदि किसी स्कूल कॉलेज में ब्रह्म विद्या दी जाने लगी तो सरकार का सेक्यूलर रूप नहीं रहेगा।

यद्यपि सरकार का यह भय अकारण है, इस पर भी हम तो शिक्षा, विद्या और अविद्या दोनों को सरकार के अधीन रखने के पक्ष में नहीं हैं।

हम राज्य सेक्यूलर नहीं चाहते। सेक्यूलर एक संदिग्ध अर्थों वाला शब्द है। परमात्मा को अस्वीकार करने से लेकर गंदे व्यवहार तक सब-कुछ इसके अर्थों में आ जाता है। इसके लिए अंग्रेजी का दूसरा शब्द है profane। किसी मूर्ख ने सेक्यूलर शब्द को राजनीति के साथ जोड़ दिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है और हमारे 'बुद्धिमानों' ने इस शब्द को मोक्षदाता मान गले से बांध लिया है।

इसके स्थान पर Non-religious (असम्प्रदायिक) शब्द अति उपयुक्त है। मज़हब अथवा सम्प्रदाय सदा रीति-रिवाजों और प्रथा से सम्बन्ध रखते हैं। राज्य उनसे मुक्त होना ही चाहिए। परन्तु यह भाव सेक्यूलर शब्द से स्पष्ट नहीं होता।

साथ ही हम तो यह कहते हैं कि ब्रह्म विद्या का किसी मज़हब, हमारा मतलब है रीति-रिवाज़ अथवा प्रजा पद्धति से सम्बन्ध नहीं है। परमात्मा में विश्वास एक वैज्ञानिक तथ्य है। यह संसार तीन मूल तत्त्वों का बना है। परमात्मा, जीवात्मा और प्रकृति। इन मूलतत्त्वों के ज्ञान को हम ब्रह्म ज्ञान अथवा अध्यात्म ज्ञान कहते हैं।

इन तत्त्वों के कार्यों का ज्ञान ही अध्यात्म है और क्योंकि मनुष्य में कार्य करने वाला जीवात्मा है, इस कारण अध्यात्म ज्ञान मनुष्य के कार्यों को ठीक मार्ग पर रखने में सहायक होता है।

दोनों प्रकार की शिक्षा अनिवार्य है।

यह शिक्षा राजनीतिक प्रपंच से पृथक् होनी चाहिए। यह इस कारण कि राजनीति शिक्षा की पथ-पदर्शक नहीं होनी चाहिए। वरन् शिक्षा राजनीति को दिशा देने वाली हो।

परन्तु हमारे संविधान के निर्माताओं ने न केवल शिक्षा को राज्य का विषय बना रखा है वरन् इसे देश के उन्नीस राज्यों के पृथक्-पृथक् हाथों में दे रखा है। हम इसे भारत का संविधान बनाने वालों का एक महान् अबुद्ध कार्य मानते हैं।

शिक्षा सम्पूर्ण देश की एक ही संस्था के अधीन होनी चाहिए। यह संस्था राजनीति से पृथक् होनी चाहिए और पूर्ण देश में शिक्षा एक समान होनी चाहिए।

यह हम मानते हैं कि एक बच्चे की शिक्षा तब से आरम्भ होती है जब वह माँ के पेट में अभी दो मास का होता है। हमारे शास्त्रों में उस समय से ही बालक की शिक्षा को माता-पिता के हाथ में लेने को कहा है। उस समय माँ का मन ही बच्चे के मन को प्रभावित करता है। इसी कारण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शास्त्र ने इस समय पुंसवन संस्कार करने का विधान किया है। इस पर भी इस समय की शिक्षा, माता-पिता के अतिरिक्त किसी अन्य के हाथ में नहीं हो सकती।

पांच वर्ष की आयु तक शिक्षा माता-पिता के हाथ में होती है। यह उसी भाषा में होगी जो बच्चों के माता-पिता बोलते हैं।

इसके उपरान्त अगले पाँच वर्ष तक जो भी शिक्षा हो, वह बालक के माता-पिता की भाषा में हो, परन्तु बाद में शिक्षा का माध्यम भारतीय भाषा होनी चाहिए।

भारतीय भाषा देवनागरी लिपि में हिन्दी ही होनी चाहिए। इस पर भी इस काल की शिक्षा कितनी मातृभाषा में हो और कितनी हिन्दी अथवा अन्य भाषा, जो भाषा समिति निश्चय करे, में हो, इसका निश्चय किसी भी अवस्था में राजनीतिक बंधनों से बँधे लोगों के हाथ में नहीं होना चाहिए।

इसी में देश का कल्याण है। जो भी देश की भाषा हो, वह कॉलेज की अंतिम श्रेणी तक चले।

कोई भी भाषा हो, परन्तु अंग्रेजी इस कार्य के लिए भारत देश में अनुपयुक्त है। कारण हमने बता दिया है। यह बहुत ही पिछड़ी हुई भाषा है। इसकी लिपि अधूरी है। इसमें ज्ञान भी अधूरा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंचम खण्ड

: १ :

अर्थ-व्यवस्था

हमारे देश के संविधान-निर्माताओं ने और उसके पीछे बनने वाले मंत्रिमण्डल ने देश की अर्थ-व्यवस्था में भी महान् अबुद्ध कार्य किये हैं।

पण्डित जवाहरलाल नेहरू, जो देश की गाड़ी को समाजवाद की पटरी पर ले जाने वाले हैं, अपने स्वरचित जीवन-चरित्र में लिख गये हैं कि मैं तेज गति से यात्रा करने के पक्ष में हूँ और महात्मा गांधी बैलगाड़ी पर सवारी करना पसन्द करते हैं।

पण्डितजी का अभिप्राय यह था कि महात्मा गांधी चरखा और खड्डी की अर्थ-व्यवस्था चाहते थे और वे आधुनिकतम मशीनों के पक्ष में थे।

यह बात जवाहरलालजी ने अपने जीवन चरित्र में सन् १९३१ में लिखी थी। महात्मा गांधी अपनी अर्थ-व्यवस्था की पुष्टि सन् १९४८ तक करते रहे हैं। दोनों में इस विषय में कहीं भी सामंजस्य नहीं था।

इस पर भी गांधीजी ने सन् १९३६ में अपने साथियों के विरोध के बावजूद नेहरू को कांग्रेस का प्रधान बनाया था और फिर सन् १९४६ में तो देश का प्रधानमंत्री ही बनवा दिया।

क्या महात्माजी को अपनी अर्थ-व्यवस्था पर, जिसका दूसरा नाम घरेलु उद्योगों की अर्थ-व्यवस्था है, विश्वास नहीं था ? यदि विश्वास था तो इस अर्थ-व्यवस्था का विरोध करने वाले को क्यों प्रधानमंत्री बनाने का यत्न किया था ?

क्या महात्माजी नहीं जानते थे कि नेहरू प्रधानमंत्री बनकर अपने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मत के मंत्री बनायेंगे। महात्माजी ने यह एक महान् भूल की थी। इसे हम एक महान् अबुद्ध कार्य कहते हैं।

वैसे तो महात्माजी से कुछ अधिक आशा भी नहीं थी। कारण यह कि महात्माजी श्रद्धा पर बल देते थे और बुद्धि को घटिया मानते थे।

वे समझ नहीं सके कि सर्वोपरि श्रद्धा बुद्धि के अधीन होती है। श्रद्धावान् को भी अपने विचारों का समय-समय पर निरीक्षण करना आवश्यक होता है।

महात्माजी का पूर्ण जीवन बुद्धि से तटस्थ केवल श्रद्धा के अधीन चलता रहा है। यही कारण है कि खड्डी-चर्खा के उपासक व्यक्ति के कंधों पर चढ़कर, प्रधानमंत्री वह व्यक्ति बन गया जिसे चर्खा-खड्डी पर विश्वास नहीं था।

यह ठीक है कि नेहरू भी सार्वजनिक स्थानों पर खद्दर पहनता था, परन्तु उसकी मानसिक अवस्था इससे विद्रोह करती थी।

इस विवाद का वर्णन यहाँ करने का हमारा अभिप्राय यह है कि भारत की अर्थ-व्यवस्था की दुर्दशा का यही कारण है। सन् १९४७ के रुपये का मूल्य आज तीन-चार पैसे रह गया है। हम इसे ही वर्तमान बिगड़ी अर्थ-व्यवस्था का कारण मानते हैं।

जहाँ रुपये की क्रय शक्ति तीस गुणा कम हुई है, वहाँ एक व्यक्ति की आय तीस गुणा नहीं बढ़ी।

रुपये का मूल्य क्यों कम हुआ है? यह इस कारण कि काग़ज पर नोट छाप-छाप कर जनता में बिना उचित प्रतिकार के बाँटे जा रहे हैं। इसके अतिरिक्त—

(१) ऐसे अवसर उत्पन्न किये जा रहे हैं कि कर्मचारी कम काम करने पर भी नियत वेतन पाते हैं अथवा उससे अधिक माँगते हैं। यह इस बात से स्पष्ट है कि प्रबन्ध करने वाले कर्मचारी कम काम करते हैं और वेतन अधिक पाते हैं। परिणामस्वरूप सरकारी कर्मचारियों की संख्या में अपार वृद्धि हुई है। कार्य, कर्मचारियों की संख्या में वृद्धि के अनुपात में नहीं हो रहा।

(२) ऐसे अवसर बहुत बड़ी संख्या में उत्पन्न किये गए हैं जिनमें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रिश्वत, चोरी इत्यादि अधिक होने लगी है और इस धन के प्रतिकार में धन-उपार्जन करने वालों को कुछ नहीं मिलता। यह परिश्रम का उचित प्रयोग न करना है। किसी भी स्थान पर उपकारी काम के लिए वेतन देना चाहिये। हराम की कमाई रुपये की कीमत को कम करती है।

(३) सरकार ने देश में उपकारी राज्य (welfare state) निर्माण करने के लिए दान-दक्षिणा देना आरम्भ कर दिया है। बहुत से ऐसे काम आरम्भ कर रखे हैं जो केवल जनता के, बिना उनके कोई उपजाऊ कार्य किये, मनोरंजन के लिये हैं।

(४) मालिक-सेवक के सम्बन्धों को सरकारी हस्तक्षेप से स्थिर करने का यत्न किया गया है। सरकार के बनाये नियम सेवक के कार्य से सम्बन्ध नहीं रखते। ये केवल सेवक के रजिस्टर में नाम लिखवाने से सम्बन्ध रखते हैं।

(५) कार्य की गति तेज करने अर्थात् एक घंटे में कार्य की मात्रा बढ़ाने की सीमा बाँधकर परिश्रम करने पर रोक लगाई गई है।

(६) एक मशीन पर एक घंटे में एक सौ मीटर कपड़ा बनाने के स्थान उतने ही समय में डेढ़ सौ मीटर निर्माण करने के लिये मशीन और अन्य खर्चे पचास प्रतिशत से कहीं अधिक हो जाते हैं।

प्रत्येक मशीन की कार्य-क्षमता को बढ़ाने के लिए कार्यवृद्धि की कीमत से कई गुणा अधिक मशीन की लागत होती है। उसमें ब्याज और उसकी टूट-फूट तथा उसे चालू रखने में योग्य कर्मचारियों इत्यादि पर खर्च, माल की उपज की वृद्धि से अत्यधिक होता है।

इसका परिणाम यह हो रहा है कि मशीन निर्मित वस्तु की लागत बढ़ती ही जा रही है।

हमारे कहने का अर्थ यह है कि किसी एक वस्तु के उत्पादन में मानव परिश्रम कम करने के लोभ में उस पर अन्य खर्चे इतने अधिक हो जाते हैं कि वस्तु का दाम कम होने के स्थान पर बढ़ जाता है।

साथ ही इस प्रकार मशीनों को उन्नत करने से जो लोग बेकार हो जाते हैं, उनके भी पालन-पोषण का प्रबन्ध सरकार को करना पड़ता है।

(७) जन-जन के मनोरंजन के साधनों में वृद्धि तथा उनकी उपलब्धि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में सुगमता की गयी है। इसका परिणाम यह हुआ है कि मानव समाज सीमा से अधिक अन-उपजाऊ कार्यों में लग रहा है और उपार्जन करने की क्षमता कम हो रही है।

अवकाश और मनोरंजन मनुष्य की थकावट को दूर करने के लिये होते हैं। मनुष्य की उपार्जन सामर्थ्य में ह्रास करने के लिये नहीं।

इसका अभिप्राय यह है कि यदि मनोरंजन शरीर, इन्द्रियों और मन में थकावट उत्पन्न करने वाले हों तो वे मनोरंजन न रह कर अनुपार्जन करने वाला परिश्रम ही हो जायेगा।

ये कुछ ऐसे कारण बताये हैं जिनसे मानव परिश्रम अनुपार्जन करने के कार्य में व्यय होता है और उस परिश्रम का भी मूल्य दिया जाता है अथवा देने का विधान कर दिया गया है। इसका ही परिणाम है कि जाति की अर्थ-व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो रही है और अर्थ सुख-सुविधा का साधन होने के स्थान पर दुःख, क्लेश और वैमनस्य का कारण हो रहा है।

यह सिद्धान्त है कि मनुष्य एक क्षण के लिये भी कर्म किये बिना नहीं रह सकता। उस कर्म का परिणाम भी होता है। परन्तु यदि कर्म का परिणाम सुख-सुविधा हो तो वह कर्म हितकर होता है और यदि कर्म का परिणाम दुःख, कष्ट, असुविधा और विनाश हो तो फल अवांछनीय होता है, व्यक्तिगत दृष्टि से भी और समष्टिगत दृष्टि से भी है।

वर्तमान युग में शारीरिक और मानसिक सुख-सुविधा का मापदण्ड रुपयों में आंका जाता है। इस कारण रुपये का मूल्य एक आवश्यक विचारणीय समस्या है। परिश्रम अर्थात् किया हुआ प्रयत्न जो फल उत्पन्न करता है उसको हम रुपयों में बदल लेते हैं और वस्तुएँ क्रय कर उनसे लाभ उठाते हैं। इस कारण रुपया मापदण्ड हो गया है हमारे प्रयत्न के फल का।

यही कारण है कि इस कण्डिका के आरम्भ में ही हमने रुपये के मूल्य की बात कही है। हमारा आशय परिश्रम और उसके फल के अनुपात से है।

हमने कहा है कि सन् १९४७ में रुपये का जो मूल्य था, वह आज-कल के मूल्य के अनुपात में तीन-चार पैसे रह गया है अर्थात् जो फल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आज हम एक रुपय में प्राप्त कर सकते हैं, वह सन् १९४७ में तीन-चार पैसे में प्राप्त कर सकते थे।

यह ठीक है कि उस समय बहुत-सी वस्तुएँ उपलब्ध नहीं थीं। उदाहरण के रूप में टेरिकाट के वस्त्र तब उपलब्ध नहीं थे। हम मुकाबिला कर रहे हैं उन्हीं वस्तुओं के विषय में जो तब उपलब्ध थीं और आज भी उपलब्ध हैं।

कुछ आज नये आविष्कार हो गये हैं। इसका उन वस्तुओं के मूल्यों से सम्बन्ध नहीं जो उस समय उपलब्ध थीं और आज उपलब्ध नहीं हैं। यदि इनमें सम्बन्ध है तो वह उनके मूल्य को अधिक करने में ही है, कम करने में नहीं।

उदाहरण के रूप में यदि आज टेरिकाट' के कुर्ते बनने लगे हैं तो खद्दर के कुर्तों की माँग कम होने से वे सस्ते होने चाहियें थे। ऐसा हुआ नहीं। हुआ यह है कि खद्दर भी महँगा हुआ है यद्यपि उसके स्थान पर अन्य बहुत कुछ बन चुका है।

हमारे कहने का अभिप्राय यह है कि नयी-नयी वस्तुओं के आविष्कार से पुरानी, उसी मतलब की वस्तुएँ सस्ती नहीं हुईं, महँगी ही हुई हैं। अतः वर्तमान महँगाई अथवा रुपये के मूल्य में कमी का, नयी वस्तुओं के आविष्कार से सम्बन्ध नहीं। यह सम्बन्ध परिश्रम और उसकी उपज से है।

खद्दर के कुर्ते का मूल्य भी बढ़ा है। जो कुर्ता सन् १९२५ में एक रुपये में बन जाता था, आज तीस रुपये का बनता है। लगभग तीस गुणा मूल्य बढ़ा है।

इससे हम इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि नये आविष्कारों से पुराने ढंग की वस्तुएँ सस्ती नहीं हुईं।

हमारा निश्चित मत है कि जो कारण रुपये के मूल्य के कम होने के हमने ऊपर बताये हैं, वे ही वास्तविक कारण हैं और उनको दूर किये बिना रुपये का मूल्य नहीं बढ़ सकता।

इसे धन का विस्तार (expansion of money) अथवा inflation इत्यादि नाम दिये जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन सब कारणों का एक मूल कारण है, वह है समाजवाद।

समाजवाद का अर्थ सर्वत्र यही समझा जाता है कि मनुष्य समाज के अधीन है और समाज राज्य के। इसी बात को उलट कर भी कहा जाता है। व्यक्ति की आकांक्षाएँ समाज को विकृत कर रही हैं और समाज की त्रुटियाँ राज्य में अव्यवस्था उत्पन्न करती हैं। ये दोनों प्रकार के वर्णन समाजवाद के हैं और समाज का राज्याधीन होना अथवा राज्य का समाज पर शासन, दोनों व्यवहार समाजवाद कहाते हैं।

: २ :

समाजवाद और सामाजिकता

समाजवाद एक ढंग है समाज के कार्य को चलाने का। उस ढंग के अतिरिक्त समाज का कोई घटक व्यवहार नहीं कर सकता। करे तो दण्डनीय होता है। क्योंकि समाजवाद में समाज की प्रत्येक गतिविधि राज्याधीन होती है, इस कारण समाज के आदेश की अवेहलना का दण्ड राज्य देता है।

समाजवाद में राज्य ही समाज है। और क्योंकि राज्य अपनी आज्ञा का उल्लंघन सहन नहीं कर सकता, इस कारण मनुष्य की प्रत्येक गति-विधि पर राज्य का आधिपत्य हो जाता है।

यह ठीक है कि भारत में जहाँ समाजवाद की धूम पिछले तीस वर्षों से मच रही है और समाजवाद का फंदा समाज तथा व्यक्ति के गले में उतरोत्तर कसा जा रहा है, वहां भी राज्य की बातों का उल्लघंन करने वाले एक बहुत बड़ी संख्या में हैं। कारण यह है कि चोरी करने वाले सर्वदा और सर्वत्र हैं और रहेंगे। ये अपवाद हैं। ये सिद्धान्त को असिद्ध नही करते।

कानून-भंग की बात का सम्बन्ध मानव दुर्बलता से है। इसमें किसी समाज के नियमोपनियम की त्रुटि अथवा कमी कारण नहीं है।

सिद्धान्त यही है कि एक समाजवादी देश में व्यक्ति के प्रत्येक कार्य पर समाज नियंत्रण रखता है।

परन्तु सामाजिकता इससे सर्वथा भिन्न स्थिति है। सामाजिकता का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिप्राय है कि सब व्यक्ति दूसरों से मिलकर रहें और दूसरों के अधिकारों का आदर करें। यह आदर स्वेच्छा से अपना ही हित समझ कर किया जाता है। जब किसी समाज के घटक को यह समझ आता है कि वह समाज के किसी विधान को पसन्द नहीं करता तो वह समाज को छोड़ एक तरफ हो जाता है। समाज भी उसको विवश करने का न तो हठ करता है और न ही व्यक्ति समाज को अपना व्यवहार बदलने के लिये विवश करता है। समाज में रहने के जो लाभ उसे होते हैं, वे उसको प्राप्त नहीं होते।

सामाजिकता व्यवहार है व्यक्ति और समाज का। परन्तु इसमें दण्ड देने की शक्ति जो राज्य के पास होती है। समाज शक्ति नहीं रखता, न ही प्रयोग कर सकता है।

राज्य का व्यक्ति से सम्बन्ध समाज के द्वारा नहीं होता। वह सीधा होता है। वह धर्म अर्थात् राजकीय नियमों के अनुसार होता है। इन नियमों में राज्य के अधिकार और व्यक्ति के अधिकार में सीमा रहती है। वह सीमा देश के लिखित अथवा अलिखित संविधान का अंग है।

संविधान में लिखा हो अथवा न लिखा हो मनुष्य के मूलाधिकार हैं। राज्य के भी कुछ मूलाधिकार रहते हैं। उदाहरण के रूप में राज्य का एक मूलाधिकार यह है कि जब व्यक्ति कुछ अधर्मयुक्त व्यवहार करे तो राज्य उसको पकड़ कर दण्ड दे सके। राज्य उसे दण्ड देने के लिए सेना अथवा पुलिस रख सके।

इसी प्रकार राज्य का एक अन्य मूलाधिकार है कि राज्य प्रबन्ध के लिये प्रजा से कर प्राप्त कर सके।

एक अन्य मूलाधिकार है कि जहाँ व्यक्ति अथवा व्यक्ति-समूह किसी प्रकार का षड्यंत्र करता अनुभव हो, वहाँ राज्य बलपूर्वक घुस कर वहाँ का रहस्य जान सके।

परन्तु राज्य के सब अधिकार अबाध नहीं हैं। राज्य अपने अधिकारों को प्रयोग करने का एक विधि-विधान निश्चय करता है। वह उसका उल्लंघन नहीं कर सकता। जब राज्य इन विधि-विधानों का पालन करता है और अपने अधिकारों को भंग नहीं करता तब वह राज्य धर्मयुक्त कहा जाता है। अर्थात् इन विधि-विधानों का पालन कर राज्य अपने अधिकारों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का भोग करता है।

तानाशाही का विषय पृथक् है। राज्य जो प्रजा के साथ समझौते से रहता है, यहाँ हम उसकी ही बात कर रहे हैं।

हमने बताया है कि प्रजा के अर्थात् व्यक्ति के कुछ अधिकार होते हैं जिनको व्यक्ति के मूलाधिकार कहते हैं। इसी प्रकार राज्य को भी कुछ अधिकार मिले होते हैं, जो राज्य करने में सुविधा का विचार कर निश्चय किये जाते हैं।

राज्य के अधिकार भी व्यक्ति के अधिकारों की भांति सीमित होते हैं। सीमा अधिकारों में है।

राज्य के अधिकारों पर सीमा दण्ड विधान तथा शहरी अधिकार विधान (penal code and civil code) कहाता है तथा इन विधानों को अमल में लाने की विधि criminal procedure code तथा civic procedure code है।

उदाहरण के रूप में पुलिस को किसी को पकड़ने के लिये मैजिस्ट्रेट से आज्ञा लिखवानी पड़ती है। इस आज्ञा को वारण्ट कहते हैं। यह प्राप्त किये बिना पुलिस किसी को पकड़ नहीं सकती। यह एक प्रकार से राज्य के अधिकारों पर सीमा बाँधी गयी है।

इसी प्रकार व्यक्ति और राज्य दोनों के अधिकारों पर सीमा रहती है।

वहाँ शान्ति की व्यवस्था समझी जाती है, जहाँ प्रजा और राजा दोनों अपने-अपने अधिकारों के भीतर कार्य करते हैं। जहाँ दोनों में से कोई भी अपनी सीमा पार करता है, वहाँ की अवस्था अशान्त समझी जाती है।

जहाँ कोई लिखित संविधान नहीं, वहाँ भी प्राय: ये ऊपर कहे कानूनी प्रलेख (laws) रहते हैं। ये कोड ही राज्य और व्यक्ति के अधिकारों की सीमा को बाँधते हैं। व्यक्ति के मूलाधिकार इन कानूनों में ही दर्ज हैं।

समाजवाद और सामाजिकता में अन्तर बताने का प्रयोजन यह है कि जिस देश में राज्य और व्यक्ति के अधिकारों की सीमा ग़लत-मलत हो, वहाँ यह समझना चाहिये कि न्यूनाधिक समाजवाद आ गया है और पूर्ण रूप से छा जाने का यत्न कर रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाजवादी राज्य में राज्य और समाज एक ही होते हैं। राज्य सर्व अधिकार सम्पन्न संस्थान् होता है और व्यक्ति के अधिकार शून्य समान होते हैं।

जहाँ व्यक्ति के कुछ अधिकार नहीं, वहाँ व्यक्ति के परिश्रम का मूल्य शासन लगाता है। तब मूल्य का परिश्रम से कुछ अनुपात नहीं रहता। परिश्रम का मूल्य राज्य की इच्छा और सामर्थ्य पर निर्भर हो जाता है।

यह ठीक है कि राज्य जनता के विद्रोह की सम्भावना से भयभीत मनुष्य के परिश्रम का मूल्य उसके निर्वाह के लिये आवश्यक से कम नहीं लगाता। परन्तु इसका परिश्रम से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं होता।

यह अर्थ-व्यवस्था कृत्रिम प्रबन्ध पर आधारित होती है। इससे समाज और व्यक्ति में उन्नति के लिये उत्साह नहीं रह जाता।

ऐसे समाज में जो कुछ उन्नति होती है, वह भी डण्डे के बल से होती है। भेड़ भी तो चलती है और मंजिल तय करती है, परन्तु वह मंजिल प्रगति की ओर है अथवा विगति की ओर, वह गति बूचड़ खाने की ओर है अथवा उसकी खुरली की ओर, भेड़ों को विदित नहीं होता। गड़रिया इसका स्वामी ही इसका जानकार होता है।

यही अवस्था उन देशों की है जहाँ पूर्णतः समाजवाद का चलन हो गया है।

परन्तु हम तो भारत की बात कर रहे हैं जहाँ आज समाजवाद पूर्ण रूप में नहीं है। साथ ही यहाँ का एक संविधान भी है। हम उस देश की बात कर रहे हैं, जहाँ संसद सदस्य स्वतन्त्रता से सभाघोष करते हुए गले फाड़ रहे हैं।

हमारा कहना है कि यहाँ की अर्थ-व्यवस्था ऐसी है कि सन् १९४७ से जिस गति से रुपये का मूल्य कम हो रहा है उस गति से लोगों का वेतन नहीं बढ़ रहा।

प्रायः राजनीतिज्ञ देहात में एक बेकार बैठे व्यक्ति की आय का अनुमान नगर में आठ घण्टे नित्य काम करने वाले कर्मचारी से लगाते हैं। यह मिथ्या ढंग है।

यदि देहात के किसी व्यक्ति की आय, जो वर्ष में केवल तीन महीने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

काम करता है और उन दिनों में भी प्रातःकाल से मध्याह्न तक ही काम करता है और शेष दिन तम्बाकू फूंक-फूंक कर गप्पे हांकता रहता है की चिन्ता है तो नगर में भी किसी वैसे ही काम करने वाले से तुलना करनी चाहिए। इस तुलना से भी यही पता चलेगा कि व्यक्ति की मज़दूरी का मूल्य रुपये के अवमूल्यन के अनुसार नहीं बढ़ा।

यदि सन् १९४७ में देहात में बेकारी थी, तो इसमें उत्तरदायी तत्कालीन राज्य और समाज था। राज्य विदेशी था और समाज की शिक्षा निकम्मी थी। इस कारण देहातों में सौ में से नब्बे व्यक्ति दिन-भर काम नहीं कर पाते थे और निर्धन थे।

परन्तु आज सरकार धड़ाधड़ धन देहातों में पानी की भांति बहा रही है। इस पर भी एक कर्मचारी की आय उतनी नहीं बढ़ी जितना रुपये का मूल्य कम हुआ है।

एक बात और है। देहात में भी एक मजदूर की आय और एक धनी की आय में अन्तर कम नहीं है। वह एक और सौ से अधिक का है। हमारा अभिप्राय एक मजदूर और एक फार्म के मालिक की आय से है। अतः यह निश्चित है कि भारत का नागरिक आर्थिक दृष्टि से खुशहाल नहीं हुआ। यह ठीक है कि भिन्न-भिन्न काम करने वालों की आय में अन्तर है। परन्तु हम एक ही काम करने वालों की सन् १९४७ और सन् १९७९ की आय में तुलना कर रहे हैं। आय में उचित वृद्धि नहीं हुई। रुपये का मूल्य कम होने से महंगाई अनुपात में बढ़ी है।

रुपये का मूल्य इस कारण भी कम हुआ है कि देश में हरामखोरी की वृद्धि हुई है। यह हरामखोरी सरकारी कर्मचारियों से आरम्भ हुई है और धीरे-धीरे पूर्ण समाज के घटकों में फैल रही है।

सरकारी कर्मचारी दिन-प्रतिदिन काम कम करना अपना अधिकार मानते हैं और वेतन दिनानुदिन अधिक और अधिक की मांग कर रहे हैं।

समाजवाद में राज्य अथवा यह क़हना अधिक ठीक होगा कि राज्य-कर्मचारी स्वयं को शासक मानने लगे हैं और मनमानी सुविधाओं की माँग कर रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

: ३ :

धनवान और निर्धन—१

जनता पार्टी के अध्यक्ष श्री चन्दशेखर ने एक पुस्तक लिखी है । पुस्तक का नाम है Dynamics of Social Change ।

इस पुस्तक में आपने यह बताने का यत्न किया है कि सरकारी उद्योग-धंधे और व्यवसास ही मुक्ति का मार्ग हैं । आप पुस्तक के पृष्ठ १० पर लिखते हैं—The Public Sector is subjected to strict scrutiny by the Parliamentary committee constituted for the purpose but there is hardly any machinery to go into the wastage in efficiency and under-hand methods adopted in private sector.

इसका अर्थ है—राजकीय क्षेत्रों में उद्योग-धंधों की कड़ी देखभाल संसदीय कमेटी से जो इसी काम के लिए बनायी गयी है, होती है और निजी क्षेत्र के उद्योग-धंधों में इस अभिप्राय का कोई साधन नहीं जो इनकी अकुशलता, अपव्यय और लाभ प्राप्त करने के अनियमित उपायों की देख-रेख कर सके।

इस चार पंक्तियों के वक्तव्य में पाँच मिथ्यात्व हैं । यथा—

(१) सरकारी उद्योग-क्षेत्रों में देखभाल के लिए संसदीय कमेटी बनी है । संसदीय कमेटी इतनी कुशल है कि वह कुछ देख भी सकती है, यही असिद्ध है। जो लोग लाखों रुपये खर्च कर, जनता को वायदे कर-करके संसद के सदस्य बने हैं, उनमें से एक भी वायदा वे पूरा नहीं कर सके । उन सदस्यों को यह समझ लेना कि वे सर्वज्ञ हैं और दोष जान लेंगे, अपने 'मुंह मियाँ मिट्ठू' बनना है ।

(२) सरकारी क्षेत्र में उधोग-धंधे कुशलता से कार्य नहीं कर रहे हैं । समाचार-पत्रों की रिपोर्टों से तो यह पता चलता है कि उन पर लगे रुपये का व्याज भी पैदा नहीं होता । अधिकांश घाटे में जा रहे हैं ।

(३) निजी क्षेत्र की देख-रेख के लिये कोई प्रबन्ध नहीं । क्या उन पर संसदीय कमेटी अथवा कमेटियाँ नहीं बैठ सकतीं ? क्या संसद के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अल्ला-मियाँ ने किसी प्रकार का प्रतिबन्ध लगा रखा है ?

(४) समय-समय पर इस प्रकार की कमेटियां निजी क्षेत्र पर बैठाने की सामर्थ्य संसद रखती है। यह बैठाती भी रही है और उन कमेटियों की रिपोर्ट जब निजी मालिकों के पक्ष में आती हैं तो कह दिया जाता है कारखाने के मालिकों ने घूस देकर आपना काम बना लिया है। यह नहीं कि सरकारी जाँच करने वाले घूस खा गये हैं।

(५) निजी क्षेत्र अकुशल हैं। इस पर भी वे लाखों का लाभ दिखाते हैं।

परमात्मा लेखकों और पाठकों को कुछ सद्बुद्धि दे कि वे लिखते और पढ़ते समय बुद्धि का प्रयोग कर सकें। केवल दूसरों को बेईमान कह देने से कुछ बनता नहीं। संसद को सर्वसत्ता सम्पन्न कहा जाता है। यदि इस पर भी संसद प्रबन्ध नहीं सर सकती तो यह नाकारा है।

श्रीचन्द्रशेखर का कथन कुछ ऐसा है—'नाच न जाने आंगन टेढ़ा'।

वस्तुस्थिति यह है कि ये पाँच सौ से ऊपर 'महापुरुष' जो संसद में बैठे हैं, अपने निजी झगड़ों से ही अवकाश नहीं पा सकते अथवा इनमें कार्य करने की क्षमता लेशमात्र भी नहीं। यही कारण है कि भारत जैसे महान् देश का राज्य प्राप्त कर भी अपनी अकुशलता के दोष दूसरों पर लगा रहे हैं।

इसी पुस्तक की भूमिका लिखने वाले एक श्री ब्रह्मानन्द यह कहते हैं कि दो हज़ार मील लम्बे-चौड़े और साठ करोड़ से ऊपर जनसंख्या वाले देश में केवल बीस उद्योगपति हैं, जिन्होंने प्रगति को रोक रखा है।

हम समझते हैं कि कोई भी किसी की प्रगति को रोक नहीं सकता और न ही रोके हुए है। जो-जो जितना योग्य है, उतना-उतना उसे मिल रहा है। योग्यता विश्वविद्यालय की परीक्षा करने से पता नहीं चलती। न ही परीक्षा का योग्यता से सम्बन्ध है। योग्यता और सम्पन्नता में पाँच अंग काम करते हैं। भगवद्गीता में कहा है—

पञ्चैतानि महाबाहो कारणानि निबोध मे ।
सांख्ये कृतान्ते प्रोक्तानि सिद्धये सर्वकर्मणाम् ॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अधिष्ठानं तथा कर्त्ता करणं च पृथग्विधम् ।
विविधाश्च पृथक्चेष्टा दैवं चैवात्र पञ्चमम् ॥

—१८—१३, १४

किसी कर्म की सफलता में पाँच अंग हैं। प्रथम—कर्त्ता का शरीर और शरीर की उपलब्धियाँ; द्वितीय—कर्त्ता (जीवात्मा); तृतीय—चेष्टा करने वाली इन्द्रियाँ; चतुर्थ—साधन; और पंचम—भाग्य।

श्री चन्द्रशेखर केवल साधनों को सब कुछ मान बैठे हैं। हम तो यह कहते हैं कि समाजवादी सरकार के साधन असीम हैं और सरकार को कोई विवश नहीं करता कि वह केवल देश के इन उद्योगपतियों को ही समाज समझे।

साधन, जिसमें पूंजी भी है, सरकार के पास असीम है। बीमा कम्पनियों की सारी राशि सरकार के पास है। बैंकों की अपनी आय है। टैक्स लगाने की अपार सामर्थ्य सरकार के पास है और फिर सुरक्षित कोष भी हैं। तब फिर पराई तान देखकर सिर धुनना शोभा नहीं देता।

हम समझते हैं कि प्रत्येक धनी बनने वाले में ये पाँच गुण होते हैं। जो केवल धोखा-धड़ी करके धनवान होते हैं, वह चार दिन की चाँदनी ही होती है। उनका धन पैदा होता और विनष्ट हो जाता है। वे उद्योगपतियों की श्रेणी में नहीं माने जा सकते।

एक बात स्पष्ट है कि मनुष्य, विशेष रूप में सर्व साधारण से आगे आने वाले, प्राय: कामनाओं से प्रेरित अधर्माचरण करते हैं। इसमें निजी क्षेत्र और सरकारी क्षेत्र की बात नहीं है। सरकारी अफसर और संसद सदस्य दूध के धुले नहीं हैं। वे भी अन्य मनुष्य की भाँति कामनाओं के अधीन होते हैं।

साथ ही यह भी तथ्य है कि देश में भले, धर्म-परायण, बुद्धिमान लोगों का अभाव नहीं है। कठिनाई यह है कि इन गुणों के रखने वाले अपने गले में ढोल बाँध कर बजाते नहीं फिरते। भले व्यक्तियों को खोजने और उनसे प्रार्थना कर उनको आगे लाने की आवश्यकता होती है।

राज्य कार्य के लिए भले, योग्य, बुद्धिमान और धर्मपरायण लोगों को ढूंढने की आवश्यकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैसे ? यह ध्यान देना चाहिए कि ऐसे व्यक्ति लाखों रुपये खर्च कर संसद-सदस्य बनने नहीं आयेंगे। ये लोग बड़े-बड़े जलसे-जलूस निकाल कर अपना विज्ञापन नहीं देंगे। ये घर-घर वोट माँगने भी नहीं जायेंगे।

इन लोगों को आगे लाने का उपाय दूसरा है। परन्तु आज तो भूमण्डल में प्रजातन्त्र अर्थात् संसदीय पद्धति की धूम है और आज किसी भी देश का कार्य संतोषजनक, धर्मयुक्त तथा यज्ञरूप नहीं हो रहा।

भूमण्डल के राज्यों का विवरण लिखने बैठें तो पुस्तकों के पन्ने काले करने के अतिरिक्त अन्य कुछ भी हाथ नहीं लग सकता। आज राजनीति का कार्य डिप्लोमेसी (चालबाज़ी) कहाता है। अर्थात् सभ्यतापूर्वक दूसरे को धोखा देने की विधि। ऐसा कार्य करने के लिए कोई भला व्यक्ति क्यों आगे आयेगा ?

आज भूमण्डल के देशों की एक साँझी बात है, चुनावों में हथकण्डे। किसी धर्मपरायण और संतोषी जीव से इस प्रकार का असुर काम करने की कोई आशा नहीं रख सकता।

यह नहीं कि ऐसे लोग अवसर मिलने पर काम नहीं करेंगे और और अपनी पूर्ण योग्यता से देश की गाड़ी को नहीं चलायेंगे। परन्तु ऐसे लोगों से काम लेने के लिए देश को प्रजातन्त्रवाद नहीं वरन् किसी अन्य पद्धति का आश्रय लेना पड़ेगा। इन प्रजातंत्रात्मक चुनावों का खेल हम सन् १९१२-१३ से देख रहे हैं। इसमें क्या-क्या समाघोष लगाये जाते हैं, क्या-क्या प्रलोभन दिखाए जाते हैं और किस प्रकार भिखमंगे सदस्य दिन-रात में लखपति हो जाते हैं, यह सब आंखों देखी बात है। ये लोग चुनावों पर लाखों व्यय करके भी निर्धन नहीं होते। यह भला कौन नहीं जानता ?

इस गोरखधंधे में किसी ईमानदार, सत्यनिष्ठ, परमात्मा के भक्त के फँसने की कैसे आशा की जा सकती है ?

संसदीय पद्धति का राज्य-प्रपंच धोखाधड़ी है। यह कहा जाता है कि संसद में भी कुछ तो भले लोग हैं ही। इससे कोई इनकार नहीं कर सकता। परन्तु हमारा कुछ ऐसा अनुभव रहा है कि कोयले की खान में सबका मुँह काला हो जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

हमारा यह निश्चित मत है कि वर्ण-धर्मानुकूल समाज-व्यवस्था ही

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वश्रेष्ठ व्यवस्था है।

यह पद्धति है प्रजा में गुण, कर्म, स्वभाव के अनुसार पदवितरण की और कर्त्तव्य का निश्चय करने की। यह ही सर्वश्रेष्ठ पद्धति है।

परन्तु वर्ण का निश्चय किस तरह से हो? वर्तमान युग के राजनीतिज्ञ कहते हैं कि वयस्क मतदान से गुण, कर्म, स्वभाव का पता चल जाता है। अनुभव और युक्ति इसके विपरीत है। कभी किसी देश में कोई एक योग्य तथा भला व्यक्ति इस पद्धति से आगे आ भी जाये तो इस एक बुलबुल से नखलस्तान का होना सिद्ध नहीं होता।

सामान्य लोगों की रुचि जैसी होगी, वैसा ही वे संसद-सदस्य चुन कर भेज देंगे। यदि कहीं सिनेमा के शौकीन अधिक हैं तो वहां एक फिल्म निर्माता संदस्य अथवा मुख्यमंत्री बन सकता है और जहां लोग चुटकी भर में धनी होने की लालसा रखते हैं, वहां धनी अथवा धन को खुले हाथ व्यय करने वाला निर्वाचित हो सकता है।

प्रायः लोग जो राजनीतिक जलसों में आते हैं अथवा जो समाचार पत्रों में राजनीति के समाचार पढ़ते रहते हैं, वे मनोद्गार उभारने वाली बातें सुनने अथवा पढ़ने के शौकीन होते हैं। बस, ऐसे ही लोग, जो मनोद्गारों को उभारने वाले वक्तव्य दे सकते हैं, जनता का बहुमत प्राप्त कर सकते हैं।

आज का राजनीतिक चित्र तो यह है कि एक उठता है और दिन-रात राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की निन्दा करता है। बिना किसी प्रमाण और युक्ति के लच्छेदार वचनों में बात करता है। और देश में ऐसे 'बुद्धिमानों' की संख्या कम नहीं जो उसकी भी वाह-वाह करते हैं।

जैसा कि ऊपर बताया है, धनवान होने के लिये पांच गुण होने चाहियें। परन्तु इन पांचों गुणों में विश्वास न रखने वाले धनी बनने वालों को गालियां देने वाले भी कम नहीं हैं।

संसद सदस्यों की बात तो इसलिये बीच में आ गयी क्योंकि देश में भले-बुरे को पहिचानने वाले ऐसे लोग बन गये हैं जो किसी प्रकार की योग्यता न रखते हुए भी निर्वाचित हैं वयस्क मतदान से। इस कारण इन 'नेताओं' की तनिक चर्चा करनी पड़ी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारत जैसे विशाल देश में जब दस-बीस अधिक धनवान हो गये हैं तो वे साठ करोड़ का मार्ग रोककर नहीं खड़े हो सकते। यदि सामान्य भारतवासी निर्धन हैं तो इसमें दोष है देश की शिक्षा-पद्धति का और शिक्षा पद्धति का अयोग्यों के हाथ में होना और इसमें कारण है हमारा मिथ्या आर्थिक नीतियों का अवलम्बन।

धनवान और सुखी का, वस्तुओं की प्रचुरता से पता नहीं चलता। सुख और शान्ति का आधार है आय तथा रुपये के मूल्य में उचित सन्तुलन। रुपये के मूल्य का अभिप्राय है रुपये की क्रय-शक्ति। किस क्रय-शक्ति वाले कितने रुपये एक सामान्य व्यक्ति पैदा कर सकता है, इससे ही सुख और शान्ति का अनुमान लगाया जा सकता है। एक सौ रुपये वेतन वाला भी धनी कहा जा सकता है यदि रुपये का मूल्य वही हो जो सन् १९०५ में भारत में था। धनवान होना और निर्धन होना आय और रुपये की क्रय शक्ति के अनुपात से पता चलता है।

: ४ :

धनवान और निर्धन—२

हमने बताया है कि कर्म की सिद्धि के लिये पांच हेतु हैं। उनमें प्रथम है शरीर। यह माता-पिता की देन है। इसमें कोई अन्य कुछ नहीं कर सकता। सरकार भी क्या कर सकती है? सरकार का समाजवाद भी कुछ नहीं कर सकता।

यह भी तथ्य नहीं कि किसी बालक का श्रेष्ठ शरीर तब ही होता है जब उसके भाई या बहन दो अथवा तीन ही हों। तनिक उनके परिवारों का इतिहास देखें, जो अपने गुणों से विख्यात हो चुके हैं। सब लम्बे-चौड़े परिवारों के सदस्य रहे हैं। सुभाषचन्द्र बोस, जगदीश चन्द्र बसु, रवीन्द्रनाथ ठाकुर। यह लेखक भी इसी श्रेणी में अपने को समझता है। यह ठीक है कि लम्बा-चौड़ा परिवार होना किसी की उन्नति में सहायक नहीं, परन्तु यह भी सत्य है कि लम्बा-चौड़ा परिवार किसी प्रकार से किसी की उन्नति में बाधक भी नहीं। शरीर में विकास जीवात्मा के अपने कार्य से भी हो सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सफलता का दूसरा हेतु है कर्ता। इसका अभिप्राय है जीवात्मा। यह हिन्दू जीवन मीमांसा के अनुसार अपने पूर्व जन्म के कर्मों से अपने स्वभाव को लेकर आता है। साधुओं के घर में व्यभिचारी पैदा होते देखे जाते हैं और दुराचारियों के घर में सभ्य, सुशील भी देखे गये हैं। यह जीवात्मा के पूर्व कर्मों के फल से होता है। जीवात्मा के पांच गुणों में इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, प्रयत्न और चेतना सब जीवात्माओं में समान रूप में नहीं देखे जाते। उन्नति की प्रबल इच्छा के संस्कार लेकर आये जीवात्मा ही उन्नति करते हैं। ऐसा गीता का भी मत है।

तीसरा हेतु है करण। करणों में जो आदेश देने वाले हैं, वे तो उन्नति के साधन उपलब्ध करते ही हैं। परन्तु आदेश पालन करने वाले करण भी इसमें सहायक होते हैं। हम बता चुके हैं कि करणों में बुद्धि सबसे अधिक सहायक होती है।

चौथा हेतु है चेष्टा। उन्नति वे लोग करते हैं जिनकी चेष्टाएँ सन्मार्ग का अवलम्बन करती हैं। पांचवा हेतु है भाग्य अर्थात् कर्मफल।

अतएव धनवान होना भी कर्मफल है। एक प्रकार की सिद्धि है। इसमें भी अपने कहे पांच अथवा अधिकाधिक हेतु काम कर रहे होते हैं।

इनमें कुछ ऐसे भी हैं कि जो केवल एक ही हेतु, भाग्य के आश्रय उन्नति करते हैं। ऐसों में हम पण्डित जवाहरलाल नेहरू को एक समझते हैं। इनके पूर्वजन्म के कर्म ही उनकी गाड़ी वेग से चलाने में सबल हुए थे। जनमत से श्रेष्ठता का मापदण्ड न देखने वाले जाति के विद्वान् इतिहासज्ञ कभी पण्डितजी के जीवन-कार्य का मूल्यांकन करने लगें तो उनको यह समझने में देर नहीं लगेगी कि यह व्यक्ति अपने को नेता सिद्ध करने में जीवन भर यत्न करता रहा। भाग्य से देश में अंग्रेजी पढ़े-लिखों की संख्या वृद्धि पा रही थी। उन्होंने इसे कन्धों पर उठा कर राजगद्दी पर बैठा दिया। परन्तु देश को इसका बहुत बड़ा मूल्य चुकाना पड़ा है।

खैर, यह तो भविष्य में देखने की बात है। वर्तमान काल की बात तो यह है कि पण्डितजी की भारत को देन उनकी सुपुत्री हैं और देश में समाजवादियों की भीड़ है। सुपुत्री भी उग्र समाजवादी हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

सन् १९५६ से १९७९ तक, २३ वर्षों में न तो रुपये के मूल्य में वृद्धि हो

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सकी, न चोर, ठग, राहज़न, बलात्कार करने वालों में कमी हुई है। हम दिन-प्रतिदिन रूस के प्रभाव क्षेत्र में पहुंचते जाते हैं और लम्बी-चौड़ी डींग हांकने पर भी न तो बेकारी दूर हो रही है, न ही कोई जातीय चरित्र निर्माण हो सका है।

न तो हम देश को प्रजातंत्र की ओर ले जा सके हैं, न समाजवाद की ओर। यह इस कारण है कि पण्डित जवाहरलाल नेहरू की सृष्टि आज भी देश में धूम मचाती फिरती है। ऐसे लोगों के उपायों से धनवान निःशेष नहीं हो रहे और निर्धन धनवान नहीं हो रहे।

वैसे धनवान और निर्धन में अन्तर कम करने के भी उपाय हैं। यथा—

(१) मशीनों का न्यूनतम प्रयोग;

(२) उत्पादन बढ़ाने वाली ऐसी मशीनों का निर्माण जो एक-एक व्यक्ति द्वारा प्रयोग में लाई जा सकें;

(३) प्राकृतिक शक्ति का प्रयोग, परन्तु छोटी-छोटी मशीनों में;

(४) कम से कम दस घंटे नित्य परिश्रम करने का अभ्यास;

(५) खेती-बाड़ी, अभिप्राय यह कि अनाज की उपज में पुनः गाय और बैल का प्रयोग। व्यक्तिगत परिश्रम को उपमा। देश की पूर्ण अर्थ-व्यवस्था का आधार भोजन; वस्त्र तथा मकान।

यदि ये तीन आवश्यकताएं (भोजन, वस्त्र तथा मकान) निजी क्षेत्र में सस्ते नहीं हो सकतीं तब ही इन्हें सरकारी क्षेत्र में लाकर इनको कम से कम मूल्य पर उपलब्ध कराना चाहिए।

(६) इन मूल आवश्यकताओं के प्रयोग में बड़ी-बड़ी मशीनों के प्रयोग पर रोक; बड़ी-बड़ी मशीनों से वस्तुएं सस्ती होंगी, यह विचार मस्तिष्क से निकालना पड़ेगा।

धनी वह है जो दस घंटे के परिश्रम के उपरान्त इतना उत्पादन कर सके कि नवीनतम उपलब्धियों का भोग कर सके। अनाज, वस्त्र इत्यादि सस्ते होने पर अन्य सामग्री भी सस्ती होगी।

बड़ी फैक्टरियों और मशीनों का प्रयोग केवल देश की सुरक्षा के लिये ही होना चाहिये। तब सुरक्षा का सामान भी सस्ता बनेगा। कहने का अभिप्राय यह है कि सुरक्षा-उद्योगों के लिये ऊर्जा प्रचुर मात्रा में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और सस्ती मिलेगी और कर्मचारी कम वेतन पर मिल सकेंगे।

देश में निर्मित वस्तुओं का मूल्य देश के भीतर तो कम होना ही चाहिये और यह मशीनों के प्रयोग को कम करने से हो सकेगा। विदेशों में रुपये का मूल्य बढ़ना चाहिये। यह देश के सब सबल घटकों का दिन में दस घंटे नित्य परिश्रम करने से होगा।

कर्मचारियों की इस मनोवृत्ति को निर्मूल करना होगा कि काम कम और परिश्रम अधिक मिले। इससे वस्तुएं सस्ती नहीं होतीं। कम काम पर ही यदि वेतन अधिक दिया गया तो निःसन्देह वस्तुएं महंगी होंगी।

घाटे के बजट एक सीमा तक और कुछ काल तक ही चल सकेंगे, परन्तु इससे भूखमरी उत्पन्न होगी और तब विद्रोह खड़ा हो जायेगा।

देश की वर्तमान स्थिति यह है कि जनता सरकारी सरकार-क्षेत्रों की वृद्धि में हाथ पांव मार रही है। परिणाम यह हो रहा है कि सरकारी कर्मचारियों की संख्या बढ़ रही है। वे निरन्तर मांग कर रहे हैं कि काम के घंटे कम हों और वेतन अधिक हो।

साथ ही बड़े-बड़े कारखाने, जिनमें सहस्रों कर्मचारी एक स्थान पर जमा होकर मशीनों से द्रुतगति से माल तैयार करें, यह सब हो रहा है। परन्तु माल महंगा बनता है। सामान्य कर्मचारी उस सामान को खरीद नहीं सकता और फिर वह अनियमित उपायों से आय करता है। इस अनियमित आय को वह उपयोगी और उपार्जन करने में नहीं लगा सकता। तब शराब, व्यभिचार और तस्करी का माल खरीदने में इस अनियमित आय का व्यय होता है। यह ढंग जीवन को सुखी और सुलभ करने में सक्षम नहीं।

परिश्रम से धन पैदा होता है। परिश्रम करने में समय लगता है। कम परिश्रम और अधिक वेतन मंहगाई को ही बढ़ायेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

षष्ठ-खण्ड

: १ :

प्रजातंत्र—१

आज प्रजातंत्र का अर्थ यह माना जाता है कि राज्य प्रजा की राय से हो। यह असम्भव है। यह हो नहीं सकता क्योंकि जब भी कोई बड़ी समस्या सम्मुख आती है तो उस समय प्रजा से राय लेना सम्भव नहीं। किसी भी प्रजातांत्रिक देश में विशेष अवसर पर उत्पन्न होने वाली समस्या पर राय लेने का समय ही नहीं होता। पांच वर्षों में कोई नयी समस्या उत्पन्न ही नहीं होगी, यह कहा नहीं जा सकता।

निर्वाचित प्रतिनिधियों से यह आशा नहीं की जा सकती कि वे आगामी पांच वर्ष में उत्पन्न होने वाली सब समस्याओं को पहले से ही अपने मतदाताओं को बता सकें।

उदाहरण के रूप में भारत चीन के युद्ध की बात ली जा सकती है। चीन से पंचशील की संधि हो चुकी थी। इस पर भी चीन ने आक्-साई-चिन में बिना भारत सरकार की राय से सड़क बना ली।

सड़क का पता जब सरकार को चला तो उसने इसको जनता से छुपाने का यत्न किया। परन्तु एक अंग्रेजी समाचार पत्र ने यह समाचार छाप दिया। तब पण्डित जवाहरलाल ने इसकी महत्ता को कम कर संसद के सदस्यों को भ्रम में डालने का यत्न किया।

उस समय जनता से राय नहीं ली जा सकती थी। जनता से राय की जाती तो जो जवाहरलालजी ने करना था, वह लोगों को बता नहीं सकते थे। अपने आप उन्होंने जो कुछ किया, उसका परिणाम भारत चीन युद्ध हो गया। युद्ध के उपरान्त भी जो कुछ हुआ, वह जनता से राय कर नहीं हुआ। उसके उपरान्त जो कुछ सरकार अब करना चाहती है, वह जनता

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को बता नहीं सकती।

क्योंकि जनता को बताया नहीं जा सकता, इस कारण संसद में भी रखा नहीं जा सकता।

इसी प्रकार एक अन्य उदाहरण लिया जा सकता है। सन् १९६५ में भारत पाकिस्तान में युद्ध हुआ। युद्ध अनिर्णीत रहा। क्यों? इस कारण कि पाकिस्तान दुर्बल होते हुए भी अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में मित्र अधिक रखता है। युद्ध-विराम संधि हुई। परन्तु स्थायी संधि क्या हो, इस विषय में भी जनता से राय नहीं की जा सकी। जो कुछ समाचार-पत्र कहते थे, वह जनता की राय नहीं कही जा सकती थी। इस पर भी जो संधि हुई वह समाचार-पत्रों में भी कहे अनुसार नहीं हुई। समय ही नहीं था कि जनता से राय की जा सके।

कदाचित् लाल बहादुर शास्त्री ने जो कुछ किया, वह मंत्री-मण्डल की राय से भी नहीं था।

पीछे इन्दिरा गांधी और श्री भुट्टो में संधि हुई और इन्दिराजी ने भी मूल, जिसका हल प्रजा चाहती थी, उसके विपरीत पाकिस्तान को वचन दे दिया और संधि पर हस्ताक्षर हो गए।

इसी प्रकार प्रतिदिन समस्याएँ उत्पन्न होती रहती हैं जिनके विषय में जनता से तुरन्त सम्मति नहीं ली जा सकती। इस कारण अधिकारियों का निर्वाचन सदा बहुत सोच-विचार कर करना चाहिये।

हमारा सुनिश्चित मत है कि वर्तमान वयस्क मत-प्रणाली से योग्य अधिकारियों का चुनाव नहीं हो सकता। विशेष रूप में जबकि संसद सदस्य बनने के लिए किसी प्रकार की योग्यता, अनुभव इत्यादि की शर्त न हो।

यह तथ्य है कि संसदीय प्रजातंत्र में संसद-सदस्य बनने के लिए किसी प्रकार की योग्यता की शर्त नहीं है। कोई भी, जो अपना नाम प्रस्तावित कराने वाले एकत्रित कर ले और जमानत की धन राशि जमा करा सके, वह प्रत्याशी बन सकता है।

इस प्रकार चुने लोग कठिन परिस्थितियाँ उत्पन्न होने पर देश को हानि भी पहुँचा सकते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्दिरा गांधी ने जो समझौता भुट्टो के साथ किया था, अथवा जो एकपक्षीय युद्ध-बंदी सन् १९७१ में की थी, वह देश के लिए हितकर नहीं हुई थी। इस पर भी ये समझौते हुए और अब पीछे बदले नहीं जा सकते।

अभिप्राय यह है कि संसद-सदस्यों के लिए बिना किसी योग्यता एवं अनुभव की शर्त के प्रत्याशी बन सकना युक्तियुक्त नहीं है। कारण यह कि मंत्रिमण्डल एव संसद को ऐसे अनेक निर्णय लेने पड़ते हैं जिनके लिए, निर्णय लेने से पूर्व, जनता से सम्मति लेनी सम्भव नहीं होती।

एक बार किसी विषय पर जब मंत्रिमण्डल और संसद ने निर्णय ले लिया तो फिर वह बदलना न तो युक्तियुक्त है, न ही सम्भव है।

वैसे भी दिनानुदिन की बातों में संसद के अधिकार बहुत अधिक हैं और कोई भी ग़लत निर्णय संसद द्वारा लिए जाने के उपरान्त, उसे जन आन्दोलन से बदलवाना न केवल अयुक्त होगा वरन् असम्भव भी। साथ ही प्रत्येक बात पर आन्दोलन करा कर निर्णय बदलवाने की प्रथा और भी अधिक हानिकर होगी।

यही आज किया जा रहा है। संसद में विरोधी पक्ष न केवल लोक-सभा और राज्य सभा के भीतर बाजारी आन्दोलन करने पर विवश होता है वरन् संसद के बाहर भी जलसे-जलूस इत्यादि का आश्रय ले सरकारी निर्णयों को बदलवाने का यत्न करता है।

यद्यपि यह ढंग सर्वथा वर्जित नहीं हो सकता और न ही यह सम्भव है, परन्तु इनके लिए कम से कम अवसर हो, यही हमारा अभिप्राय है।

इसके लिए संसद-सदस्यों के निर्वाचनों की विधि को बदलना चाहिये, जिससे देश के चोटी के विद्वान् तथा राजनीति में सत्य और न्याय के चलन की प्रेरणा देने वाले निर्वाचित हो सकें। ऐसा करने के लिए कुछ संकेत हमने पुस्तक के पूर्व के खण्डों में दिये हैं।

संक्षेप में यहाँ पुनः कह देना चाहते हैं।

(१) संसद के तीन मुख्य कार्यों के लिए तीन भिन्न-भिन्न सदन (Houses) होने चाहियें। तीन मुख्य कार्य हैं—(अ) प्रबन्ध—administration, (आ) धर्म-व्यवस्था—legislative, (इ) राज्य तथा प्रजा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
में कानून के अनुसार व्यवहार की जांच-पड़ताल—Judiciary।

(२) तीनों प्रकार के कार्यों के लिए पृथक्-पृथक् सदन हों और इनके प्रत्याशियों के लिए पृथक्-पृथक् योग्यता का निश्चय हो। साथ ही इनके मतदाताओं की योग्यता का भी मापदण्ड निश्चय हो।

(३) शासन के अन्तर्गत सेना से लेकर नगर, ग्राम-पंचायतों तक का प्रबन्ध आता है। मुख्य प्रबन्ध समिति धर्म-व्यवस्था के अनुसार देश के पूर्ण प्रबन्ध को देखे। यह समिति (सदन) देश की पूर्ण वयस्क जनता द्वारा निर्वाचित हो।

(४) धर्म-व्यवस्था सभा (Legislative House) देश की कानूनी व्यवस्था को देखने के लिए हो। इसके सदस्यों की संख्या कम होनी चाहिये और सदस्य बनने के लिए कानूनी योग्यता अनिवार्य हो। सदस्यों का निर्वाचन करने वाले मतदाताओं की भी कानूनी योग्यता का कुछ मापदण्ड होना चाहि ।

(५) न्यायपालिका अर्थात् देश में न्याय-व्यवस्था को स्थापित करने के लिये एक पृथक् सदन हो। यह सदन देश के सब न्यायालयों का प्रबन्ध करे। एक तहसीलदार से लेकर सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश तक की नियुक्ति और उनकी देख-रेख अर्थात् उनकी उन्नति को यह सदन देखे। इस सदन में सदस्यों की संख्या बहुत कम होनी चाहिये। प्रत्याशियों के लिये न्याय की शिक्षा और धर्म का ज्ञान आधारभूत शर्त हो। इसी प्रकार इस सदन के सदस्यों के निर्वाचन के लिए मतदाता की योग्यता भी आवश्यक है।[1]

(६) इन तीनों सदनों के ऊपर राष्ट्रपति हो। राष्ट्रपति पूर्ण देश में वयस्क मतदान द्वारा निर्वाचित हो।

(७) इन सब निर्वाचनों में विजयी सदस्यों के लिए मतदाताओं के पचास प्रतिशत मत की न्यूनतम शर्त रहे। आवश्यकता पड़ने पर सर्वाधिक मत प्राप्त दो व्यक्तियों में पुनः मतदान हो।

---

१. इन विषयों पर अधिक व्याख्या के लिए लेखक की रचना 'प्रजातांत्रिक समाजवाद' देखें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्तमान प्रबन्ध में लोकसभा का निर्वाचन देश के पूर्ण वयस्क मतदाताओं द्वारा होता है और लोकसभा सब विषयों में सर्वाधिकार सम्पन्न होती है।

साथ ही लोकसभा के सदस्य तथा राज्यों की विधान सभाओं के सदस्यों द्वारा राष्ट्रपति का चुनाव होता है। इसका परिणाम यह होता है कि राष्ट्रपति बहुमत प्राप्त दल का प्रतिनिधि और उनके विचारों का व्यक्ति होता है।

एक अन्य बात है। राष्ट्रपति के कुछ भी अधिकार नहीं। उसे मंत्रि-मण्डल के कथन पर हस्ताक्षर करने ही होते हैं। यह सर्वथा एक अबुद्ध विधि-विधान है।

हम प्रजातंत्र को एक युक्तियुक्त प्रपंच मानते हैं। प्रजा का इसके निर्माण में हाथ होना चाहिये। परन्तु प्रत्येक मतदाता को उतने ही अधिकार मिलने चाहियें जितनी उसकी योग्यता हो तथा जिसका उसे स्वभाव है। इसे ही हम गुण, कर्म, स्वभाव की व्यवस्था कहते हैं और यही प्रजातंत्र है।

प्रजा का अधिकार राज्य में है, परन्तु वह अधिकार प्रजागण की योग्यता में निहित है।

राष्ट्रपति मिट्टी का माधव नहीं होना चाहिये। उसके भी कुछ अधिकार होने चाहियें और उन अधिकारों की गणना संविधान में होनी चाहिये।

हम समझते हैं कि वर्तमान संसद-सदस्य इस प्रकार के प्रजातंत्र का विरोध करेंगे। यह इस कारण कि वे प्रायः अयोग्यों का जमघट हैं और उनके अधिकार असीम हैं। जब किसी अयोग्य को असीम अधिकार मिल जाये तो वह इसे कदापि छोड़ना नहीं चाहता।

देश की पूर्ण अव्यवस्था का यही कारण है। देश में जो नित्य नये-नये आन्दोलन और पुलिस के साथ टकराव होते हैं तथा उन झगड़ों की संसद में गूंज उठती है जहां गली-गली में झगड़ा (street fight) जैसे दुर्वचन सुनाई पड़ते हैं, यह अयोग्यों को अधिकारपूर्ण स्थान पर बैठा देने से हो रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके लिए एक नयी संविधान सभा की नियुक्ति करनी होगी। तभी देश में व्यवस्था कायम होगी अन्यथा देश का जो हाल हो रहा है और आगे भी होगा, उसकी कल्पना कर दिल काँप उठता है।

: २ :

प्रजातंत्र—२

भारत में प्रचलित प्रजातंत्र को हम दूषित मानते हैं। इसके दोषों का वर्णन हमने स्थान-स्थान पर किया है। हमने अपनी एक व्यवस्था उपस्थित की है। उससे इसके गुण तथा दोष और स्पष्ट हो जायेंगे।

यहाँ हम यह बताना चाहते हैं कि प्रचलित प्रजातंत्र में दोष केवल हमें ही दिखाई नहीं दिये। देश के अन्य राजनीतिज्ञ भी इसमें हेर-फेर करते रहते हैं। इसी कारण उनको भी इसके चलन में दोष दिखाई दिये हैं और वे अपनी बुद्धि अनुसार इसमें हेर-फेर करते रहे हैं। फ्रांस में डीगाल ने वहाँ प्रचलित शासन-पद्धति में बहुत परिवर्तन किये थे। उसके उपरान्त वहाँ की शासन-पद्धति में अन्तर आया था। इटली, अमेरिका और बहुत से लैटिन अमेरिकन देशों के भी संविधानों में अन्तर है। यदि यह कहा जाये कि हर देश का प्रजातंत्र हर दूसरे देश से भिन्न है तो अधिक ठीक कथन होगा।

हमारा सुझाव सार्वभौमिक सिद्धान्तों के आधार पर है। इस जगत् में एक ही सिद्धान्त पर कार्य हो रहा है, स्वस्थ मनुष्य में, समाज में और राज्य में सब स्थानों पर। अभिप्राय यह कि मनुष्य शरीर और जगत् में जिस विधि से, सुचारू रूप से, बिना किसी प्रकार की अव्यवस्था के कार्य चल रहा है, उसी विधि पर समाज का प्रबन्ध भी करना होगा। यही स्वाभाविक व्यवस्था होगी।

जहाँ-जहाँ मनुष्य शरीर और जगत् का समाज से अन्तर है, वहाँ उस अन्तर का कारण देख व्यवस्था करनी चाहिये। जिन कारणों से अन्तर है, उन कारणों पर नियंत्रण कर समाज को भी मनुष्य-शरीर के अनुसार सरलता से कार्य करना चाहिये।

हमारा सुनिश्चित मत है कि जिन देशों में समाज का प्रपंच प्राकृतिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियमों के अनुकूल रखने का यत्न किया गया है, वहाँ अव्यवस्था कम से कम है और सुख अधिक से अधिक है।

हमने बताया है कि शरीर में तीन प्रकार के अंग हैं। एक आदेश देने वाले अथवा आदेश निर्माण करने वाले, दूसरे आदेश को मानकर उसके अनुसार कार्य करने वाले। तीसरे अंग वे हैं जो प्राकृतिक अर्थात् ईश्वरीय नियमों से अपना प्रबन्ध स्वयं, परन्तु पहले अंगों के संरक्षण में करते हैं।

इन अंगों के नाम भी हमने बताये हैं। आदेश निर्माण करने वाले अंग हैं ज्ञानेन्द्रियाँ, मन तथा बुद्धि। आदेश देने वाला है जीवात्मा। कर्म करने वाले अंग हैं कर्मेन्द्रियाँ। तीसरी प्रकार के अंग शरीर में हैं रक्त-संचालक-प्रपंच, भोजन-पाचन-यंत्र और भोजन के रस को पूर्ण शरीर में पहुँचाने वाला प्रपंच। इसके साथ ही शरीर का मल-मूत्र बाहर निकालने वाला प्रपंच।

हमने यह भी बताया है कि समाज में, जीवात्मा की तुलना का अधिकारी है राष्ट्रपति अथवा राजा।

किसी शरीर में जीवात्मा का क्या स्थान है? अपने पूर्वजन्म के कर्मों के फल से वह शरीर में आता है।

शरीर में जीवात्मा शरीर का चुनाव नहीं करता। जीवात्मा अपने पूर्वजन्म के कर्मों के फल से शरीर में आता है।

किसी अच्छे शरीर में अच्छे कर्म-फल वाला आत्मा ऐसे ही है जैसे बढ़िया मकान में अच्छा किरायेदार।

इसलिये वैदिक परम्परा यह है कि शरीर के आरम्भ काल से ही शरीर को श्रेष्ठ और श्रेष्ठतर बनाने का यत्न किया जाये। इसी कारण संस्कारों का विधान है। मां के गर्भ में बन रहे बालक के संस्कार गर्भ काल में किये जाते हैं तो इसी कारण कि बालक का शरीर श्रेष्ठ बन सके। इसी प्रकार यदि किसी समाज में श्रेष्ठ राष्ट्रपति अथवा राजा की कामना हो तो उसके लिए समाज को श्रेष्ठ बनाने की सर्वप्रथम आवश्यकता है।

समाज को श्रेष्ठ बनाने के लिए राष्ट्रपति अथवा राजा की सहायता की आवश्यकता नहीं होती। बच्चे की मां का स्वास्थ्य, उसके गुणों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विकास और फिर बच्चे के माता-पिता द्वारा दीक्षा, बच्चे में उपस्थित जीवात्मा द्वारा नहीं होती।

इस कारण हमारा सबसे पहला सुझाव है कि समाज की शिक्षा-दीक्षा राष्ट्रपति अथवा शासन द्वारा संचालित नहीं होनी चाहिये। जिस प्रकार बच्चों के शरीर का निर्माण जीवात्मा नहीं करता, उसी प्रकार समाज का निर्माण शासक नहीं करता। इसके लिए अन्य साधन हैं। अभिप्राय यह कि समाज की शिक्षा राज्य से स्वतन्त्र होकर योग्य विद्वानों के अधीन होनी चाहिए।

राज्य से स्वतंत्र, समाज के विद्वानों की एक समिति शिक्षा-प्रपंच निर्माण करे।[1]

शिक्षा संस्थान न तो किसी प्रकार का व्यवसाय है, न ही यह लाभ उठाने का स्थान। यह कार्य केवल लोक-कल्याण की भावना से ही हो सकता है और होना भी चाहिए।

जब समाज स्वस्थ, सुदृढ़ और सुन्दर होगा तो परमात्मा की ओर से इसमें शासन करने वाला राष्ट्रपति भी श्रेष्ठ उपलब्ध हो जायेगा।

हमारा यह अभिप्राय नहीं कि कोई चतुर व्यक्ति आकर अपने को ईश्वर का दूत कह कर शासक बन जाये। हमारा अभिप्राय यह है कि श्रेष्ठ समाज में श्रेष्ठ विधि-विधान से ही श्रेष्ठ शासक उपलब्ध हो सकेगा।

निर्वाचन पद्धति एक श्रेष्ठ पद्धति है। परन्तु प्रश्न है कि कौन किसको निर्वाचित करे?

वर्तमान संविधान में राष्ट्रपति का निर्वाचन राज्यों की विधान-सभाओं के सदस्य और संसद के दोनों सदनों के सदस्य करते हैं। यह पद्धति दूषित है। इससे राष्ट्रपति उस राजनीतिक दल के अधीन होगा, जिसका राज्यों की विधान सभाओं और संसद में बहुमत होगा। राष्ट्रपति को इस दलबंदी से ऊपर रहना चाहिए। यह तभी हो सकता है जब राष्ट्रपति दलों के निर्वाचन से स्वतंत्र हो।

---

१. शिक्षा का प्रपंच—इस विषय का विस्तृत विवेचन लेखक ने अपनी रचना 'प्रजातांत्रिक समाजवाद' में किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस कारण हम समझते हैं कि राष्ट्रपति पूर्ण देश के वयस्क मत-दाताओं से निर्वाचित व्यक्ति होना चाहिए। इसका नामांकन राजनीतिक दलों के द्वारा नहीं होना चाहिए। इसके लिये राजनीतिक दलों को प्रचार करने की स्वीकृति भी नहीं होनी चाहिये। देश का कोई व्यक्ति अपने ही गुणों से आगे आना चाहियें।

राष्ट्रपति के निर्वाचन की ऐसी व्यवस्था हो कि किसी भी राजनीतिक, साम्प्रदायिक अथवा व्यवसायिक संस्था का समर्थन उसकी अयोग्यता का सूचक हो।

अभिप्राय यह है कि राष्ट्रपति बनने वाले व्यक्ति के अपने ही गुण दोष उसके सहायक अथवा विरोधी हों।

हम यह भी चाहते हैं कि जहाँ दो से अधिक प्रत्याशी हों, वहाँ यह आवश्यक हो कि पूर्ण मतदान करने वालों की संख्या के पचास प्रतिशत से अधिक मत से ही राष्ट्रपति निर्वाचित हो। यदि कोई भी एक इतने मत न प्राप्त कर सके तो अधिकतम मत प्राप्त: दो व्यक्तियों में पुन: चुनाव करवाया जाये। तब स्वाभाविकतया उनमें से एक जो निर्वाचित होगा उसके मत पचास प्रतिशत से अधिक होंगे।

यदि इस प्रकार से राष्ट्रपति का निर्वाचन हो तो हम समझते हैं कि वह एक श्रेष्ठ जीवात्मा की भाँति शरीर रूपी समाज में स्थापित हो जायेगा।

ज्ञानेन्द्रियाँ राष्ट्रपति को ज्ञान तो दें, परन्तु वे अधीन हों समाज अर्थात् मन के। समाज का मन ज्ञानवान् अंग है समाज का।

हमने ऊपर यह लिखा है कि ज्ञान लाने वाली संस्था (समाज का Intelligence department) सूचना विभाग शासन के अधीन नहीं होना चाहिए। शासन तो राष्ट्रपति का होगा। इस कारण सूचना विभाग राष्ट्रपति से स्वतंत्र हो।

सूचना विभाग भिन्न-भिन्न विश्वविद्यालयों का अंग हो और विश्व-विद्यालय स्वतन्त्र संस्थान् हों। अत: सूचना विभाग भी स्वतन्त्र होगा। विश्व-विद्यालयों में सब प्रकार की सूचनाएँ एकत्रित करने के प्रबन्ध होने चाहियें। विद्वान् लोग वहाँ बैठ समाज के प्रत्येक प्रकार के आँकड़े एकत्र करें और उनको प्रकाशित करें। उन आँकड़ों को देखकर राज्य अपनी नीति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनाये। यदि ज्ञानेन्द्रियां वही देखें, जो आत्मा चाहता है, वही सुनें जो आत्मा सुनता है, तो निश्चय जीवात्मा का ज्ञान एक पक्षीय और अधूरा ही रह जायेगा। शासन का सूचना विभाग कभी विश्वास योग्य नहीं होता।

आज समाचार-पत्र कुछ कहते हैं, सरकारी विज्ञप्ति उसे गलत कह देती है। कई बार विवाद खड़ा हो जाता है और परिणाम अव्यवस्था होती है।

शासन सत्य बात को छुपाने का प्रायः यत्न करता है। इसे राज्य का गुप्त कार्य कह कर उसकी रक्षा भी की जाती है। देश की सुरक्षा की दृष्टि से ऐसे गुप्त कार्यों की बात हम नहीं कर रहे। वे राज्य का अधिकार हैं। परन्तु इन गुप्त बातों के आधार पर राज्य आधारित नहीं हो सकता। इसमें धोखा-धड़ी की गन्ध आयेगी और राज्य पर अविश्वास बढ़ेगा।

हमारा मत है कि राज्य की नीतियाँ सदा प्रजा के ज्ञान में आये तथ्यों पर आधारित होनी चाहियें। कार्य गुप्त हो सकते हैं, परन्तु कार्योंका आधार (अर्थात् सूचनाएँ) गुप्त नहीं हो सकतीं। जब भी उन गुप्त कार्यों का सम्बन्ध प्रजा से बनने लगे तो राज्य को उसमें कारण बताने चाहियें।

हमारा विचारित मत है कि समाज का सूचना विभाग विश्वविद्यालयों से सम्बन्धित और राज्य के प्रभाव से बाहर होना चाहिए।

हाँ, जैसे मनुष्य की कर्मेन्द्रियाँ जीवात्मा के अधीन होती हैं उसी प्रकार राज्य कार्य करने वाले राज्याधीन होने चाहियें। मनुष्य शरीर में कर्मेन्द्रियाँ मन द्वारा ही काम में लाई जाती हैं, परन्तु मन उनसे वही काम कराता है जो बुद्धि से विचारित जीवात्मा करने को कहता है। यही प्रक्रिया समाज में होनी चाहिए। राष्ट्रपति किसी भी कार्य का आदेश, सूचना-विभाग से आँकड़े प्राप्त होने पर तथा बुद्धि अर्थात् विभागीय विद्वानों की सम्मति से दे।

इसका अभिप्राय यह है कि राष्ट्रपति को सम्मति देने वाले तीन सदन होने चाहियें। ये सदन अपने से सम्बन्धित विचारित बातों को राष्ट्र-पति तक पहुँचायें।

ये तीन विभाग, जैसा कि हम बता चुके हैं, धर्म सभा, न्याय सभा शासन-विधान सभा तथा शासन सभा होंगे। तीनों कैसे निर्वाचित हों यह भी हम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बता चुके हैं। शासन सभा के सदस्य वयस्क मतदाता निर्वाचित करें। न्याय सदन के सदस्यों को देश के अनुभवी लोग निर्वाचित करें और धर्म सभा के सदस्यों को धर्म के ज्ञाता निर्वाचित करें। धर्म से हमारा अभिप्राय स्मृति शास्त्र (law) के ज्ञाताओं से है।

सेना शासन का एक अंग हो जो शासन विभाग से बनाई सैनिक उप-समिति के द्वारा राष्ट्रपति के अधीन हो।

एक बात हमने और कही है। कादाचित् पाठकों को विलक्षण प्रतीत हो। हमने कहा है कि समाज का वैश्य समुदाय अपना कार्य स्वयं ही, आभ्यंतरिक प्रबन्ध से चलाए। इस में देश का शासन हस्तक्षेप न करे।

हमने यह भी कहा है कि वैश्य वर्ग अपने व्यवसायिक प्रबन्ध में स्वतन्त्र हो, परन्तु इनकी सुरक्षा तथा इसका पालन राष्ट्रपति के अधीन हो।

यह आजकल के इंग्लैण्ड की संसदीय प्रणाली पर आधारित भारत की संसद के सांसदों की समझ में नहीं आ सकता कि व्यापार और उद्योग किस प्रकार शासन से स्वतन्त्र किये जा सकते हैं।

उनके मन में संशय इस कारण उत्पन्न हो जाता है कि उनके मस्तिष्क में यह घुसा हुआ है कि संसद सर्वगुण सम्पन्न और सर्वसत्ता सम्पन्न संस्था है। यह है नहीं। व्यापार और उद्योग व्यक्ति के परिश्रम से सम्बन्ध रखने वाले कार्य हैं। मनुष्य परिश्रम करने में स्वतन्त्र रह कर ही अपने पूर्ण सामर्थ्य से कार्य कर सकता है। इस कारण उसका परिश्रम राज्य के नियंत्रण से स्वतन्त्र होना चाहिए।

इस पर भी उसके प्रयास का फल पूर्ण समाज को ऐसे ही प्राप्त होगा जैसे शरीर के महाप्राण के अधीन कार्य करने वाले अंगों का फल पूर्ण शरीर को मिलता है।

हमारा अभिप्राय है कि वैश्य वर्ग को अपने कार्य-संचालन में अपने नियम बनाने होते हैं। उन नियमों में हस्तक्षेप राज्य अथवा राज्य के सक्रिय अंग नहीं करते।

व्यापार मण्डल एवं उद्योगपतियों के संगठन होने चाहियें और वे अपने कार्य के (व्यवसाय और उद्योग के) अपने नियम बनायें। उद्योग और व्यापार के अपने नियमों का यह अभिप्राय नहीं कि वे अपने व्यापार और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उद्योग का सम्बन्ध पूर्ण समाज से न रखें अथवा संकुचित कर दें। जहाँ तक वैश्य समाज का सम्बन्ध समाज से है, वे समाज के नियमों का पालन करेंगे। वे उसी प्रकार के नागरिक हैं जिस प्रकार के क्षत्रिय हो सकते हैं। परन्तु कोई व्यवसायी किस प्रकार अपने व्यवसाय का प्रबन्ध करता है, अथवा कोई उद्योगपति अपने उद्योग को कितने घण्टे चलाता है, वह अपना माल किस प्रकार का बनाता है अथवा कितना अच्छा और उपयोगी बनाता है, इसमें वह राजनियमों के अधीन नहीं हो। राज्य-नियम तब कार्य में आयेंगे, जब वे अपने माल को तैयार कर बेचने के लिए बाजार में लायेंगे। अथवा जब वे अपने कार्य में सहायता के लिए अपने वर्ग से बाहर के घटकों का प्रयोग करने लगेंगे।

हमारा अभिप्राय है कि व्यापार तथा उद्योग का प्रबन्ध तो वे स्वयं करें, परन्तु अपनी उपज का वितरण समाज के नियमों के अनुकूल ही करें।

एक उदाहरण दें तो उचित रहेगा। एक जुलाहा है। वह घर में खड्डियाँ लगाकर कपड़ा बुनता है। वह क्या वस्तु कितनी बनाये और कितने घण्टे नित्य काम कर बनाये और फिर अपने माल का रूप-रंग क्या रखे, इसमें राज्य हस्तक्षेप नहीं करे। ये और इसी प्रकार की व्यवसाय सम्बन्धी बातें व्यवसाय की आवश्यकताओं और व्यवसायी की अपनी बुद्धि और सामर्थ्य से निश्चय हों। हाँ, जब अपने व्यवसाय में उसका सम्बन्ध दूसरे घटकों से पड़ेगा तो वह सम्बन्ध राज्य नियमों के अधीन हो।

जुलाहे को कपास की आवश्यकता पड़ेगी। वह कपास मोल देकर ही किसान से ले सकेगा। उसे अपने व्यवसाय में रूई से सूत को बुनने के लिये यंत्रों की आवश्यकता पड़ेगी। वह उन यंत्रों को बढ़ई इत्यादि से उन नियमों से ही प्राप्त कर सकेगा जो राज्य में प्रचलित होंगे।

जहाँ तक उसके अपने कार्य करने का सम्बन्ध है, वह स्वतंत्र हो। जहाँ तक उसका समाज के दूसरे अंगों से सम्बन्ध है, वह समाज में प्रचलित नियमों से कार्य करे।

यही तो शरीर में हो रहा है। रक्त-निर्माण हो रहा है हड्डियों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भीतर। उस निर्माण में जीवात्मा तथा शरीर की ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों, मन एवं बुद्धि का हस्तक्षेप नहीं होता। इसी प्रकार किसान का रूई उपजाने में सरकारी आदेश अथवा प्रतिबन्ध असम्भव है। जुलाहा किसान से रूई तो समाज के नियमों से लाता है, वैसे ही जैसे रक्त हृदय में तथा नाड़ियों में शरीर के नियम से ही आता है, परन्तु हृदय और नाड़ियाँ रक्त-संचालन में शरीर के अन्य अंगों के नियंत्रण से बाहर कार्य करती हैं।

यह कहा जा सकता है कि आजकल के मशीन युग में व्यवसाय तथा उद्योग-धंधों को स्वतन्त्रता नहीं दी जा सकती। हमारा इस कथन से मतभेद है। उद्योग सरकारी नियन्त्रण से बाहर होने ही चाहियें। परन्तु निर्माण पदार्थ समाज के दूसरे अंगों की सम्मति से ही वितरित हो सकते हैं।

उदाहरण के रूप में किसी मिल में मिल के स्वामी स्त्रियों की साड़ियां साढ़े चार चार गज की बनाने लगते हैं। वे बना तो सकते हैं, परन्तु वे समाज के स्त्री वर्ग को विवश नहीं कर सकते कि साढ़े चार-चार गज की साड़ियां ही प्रयोग करें। इसमें उन्हें समाज के उन अंगों की रुचि और आवश्यकता का विचार करना पड़ेगा जो उनके माल का प्रयोग करने वाले हैं।

मशीन-युग में कठिनाई तब उपस्थित होती है, जब कर्मचारियों की संख्या उद्योग एवं व्यापार में आवश्यकता से अधिक हो। मशीन ने यही कर दिया है। कर्मचारियों की माँगें कार्य से अधिक हो गयी हैं। मालिक और सेवक में झगड़े उत्पन्न हो गये हैं। इन झगड़ों को कम करने का उपाय यही है कि मशीन का प्रयोग कम किया जाये। ज्यों-ज्यों जनसंख्या बढ रही है, मशीन की अपेक्षा हाथ से काम अधिक होना चाहिए। परन्तु समाजवादी सरकारें बड़े-बड़े कारखाने और बड़ी-बड़ी मशीनें लगवाने के पक्ष में हैं। समाजवादी जानते हैं कि इससे बेकारी बढ़ती है, और बेकारी की अवस्था में सरकार का नियंत्रण बढ़ता है। उनकी धारणायें कि सरकार का अंगूठा सब बातों में होना चाहिये, बड़ी-बड़ी मशीनें, बड़े-बड़े उद्योग केन्द्र बनाने की योजनाएं बना रहे हैं।

संक्षेप में, हमारा मत यह है कि उपज की प्रक्रिया वैश्य समाज के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

 Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रबन्ध करने की बात है, परन्तु वैश्य समाज का सम्बन्ध शेष समाज से राज्य-नियम के अनुसार होना चाहिए।

यह है हमारा अभिप्राय समाज के व्यवसाय को आभ्यन्तरिक स्वतन्त्रता देने का। इससे समाज में शान्ति और सुख में वृद्धि होगी।

यहाँ एक अन्य बात का उल्लेख कर दिया जाये तो ठीक होगा। मशीन युग में जहाँ बेकारी में वृद्धि हुई है, वहाँ जनसंख्या में भी वृद्धि हुई है। मशीन से अवकाश में वृद्धि हुई है तो सन्तान उत्पत्ति में भी वृद्धि हुई है।

जाति की अर्थव्यवस्था ऐसी होनी चाहिए जिसमें अधिक-से-अधिक लोग अधिक-से-अधिक काल के लिए कार्यरत रहें।

: ३ :

प्रजातंत्र और जनमत

प्रजातंत्र का अभिप्राय है कि देश की व्यवस्था में प्रजा का सहयोग हो, शासन-व्यवस्था में प्रजा सक्रिय भाग ले। परन्तु इसका यह अर्थ कैसे हो गया कि प्रजा का प्रत्येक घटक व्यवस्था की प्रत्येक बात में सम्मति दे।

वर्तमान 'डिमोक्रेसी' का यही अर्थ लिया जाता है। वास्तव में इस पद्धति के निर्माता भी जानते हैं कि प्रजा का प्रत्येक घटक समाज और राज्य की प्रत्येक बात को न तो समझ सकता है, न ही उसमें सम्मति दे सकता है। इस कारण सब की सम्मति से राज्य की बात केवल इतने में सीमित कर दी गयी है कि पाँच वर्ष में एक बार वह मतदान केन्द्र में जाकर अपना प्रतिनिधि चुन ले।

एक बार प्रतिनिधि चुना गया, तब दिनानुदिन की बातों में न तो प्रजा से पूछा जाता है, न पूछा जाना सम्भव है।

जनता पार्टी ने भी चुनाव से पूर्व एक घोषणा-पत्र जारी किया था। उसमें बहुत कुछ कहा गया था। उन बातों को करने के लिए निर्वाचित प्रतिनिधि वचनबद्ध थे।

परन्तु उन बातों में जो कुछ किया जा रहा है, वह शून्य समान ही है। मोटी-मोटी बातों का यहाँ उल्लेख कर दें तो बात स्पष्ट हो जायेगी। सबसे प्रथम बात यही थी कि जनता पार्टी में कई दल वाले एकत्रित

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए थे। उनका कहना था कि वे अपने दलों को भूल कर अपनी संयुक्त पार्टी (जनता पार्टी) की ही बात करेंगे।

सवा दो वर्ष में मिले हुए दलों को विलीन नहीं किया जा सका। अभी भी समाजवादियों में चरणसिंह ग्रुप, मोरारजी-ग्रुप, सी० एफ० डी०, जनसंघ सभी पृथक्-पृथक् दिखाई देते हैं।

समाजवादी सन् १९५७ से पहले भी परस्पर झगड़ा करते थे। कोई प्रजा-सोशलिस्ट था, तो कोई किसान समाजवादी था। कोई लोहिया समाजवादी था तो कोई नेहरू समाजवादी था। इन समाजवादियों के अतिरिक्त भी राजनीति में कई ग्रुप थे। सब से भयंकर बात यह थी कि वह दल जो किसी राज्य में ही अपना संगठन रखता था, वह भी केन्द्र में बैठा हुआ था। हमारा अभिप्राय है 'द्रविड़ मुन्नेत्र कड़गम और बंगाल का 'फारवर्ड ब्लाक'।

जनता पार्टी में ये सब दल सम्मिलित हुए थे और उन्होंने वचन दिया था कि एक दल बनाने का यत्न करेंगे। परन्तु हुआ इसके विपरीत। जनता पार्टी में मिले हुए दल दिन-प्रतिदिन सिर ऊंचा करने लगे हैं। इन सिर ऊंचा करने वालों में चरणसिंह दल सब से आगे है। वैसे कांग्रेस (सी० एफ० डी०) भी अपना पृथक् अस्तित्व पहले के समान ही रखे हुए है। अब तो चरणसिंह और जनसंघ ग्रुप में लट्ठ चलने लगा है।

जनता घोषणा-पत्र की दूसरी बात यह थी कि आपात्स्थिति लाने वालों को दण्ड दिलाया जायेगा। दण्ड दिलाना तो दूर रहा, अभी तक वह उन खराबियों को भी दूर नहीं कर सकी जो आपात्स्थिति में इन्दिरा सरकार ने कानून और संविधान में बनायी थीं।

सवा दो वर्ष में आपात् स्थिति का एक भी अपराधी दण्डित नहीं किया जा सका। कुछ पुलिस की मार-पीट से मृत्यु भी हुई थीं। उनके विषय में भी कुछ कार्यवाही नहीं की जा सकी।

आपात्स्थिति की सब से बड़ी अपराधिन तत्कालीन प्रधानमंत्री थी। जनता पर्टी की सरकार इतनी 'चतुर' है कि इन्दिरा गांधी न केवल अपना एक दल बना वर्तमान सरकार की निन्दा करती फिरती हैं वरन् इस पार्टी के काल में पुनः लोकसभा की सदस्या भी बन चुकी हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसे एक संदिग्ध मामले में लोकसभा की सदस्यता से निकाला गया है। परन्तु जो घोर अपराध उसने किये थे, उनके विषय में जनता पार्टी अभी तक बगलें झांक रही है।

हम तो समझते हैं कि लोकसभा में यह प्रस्ताव पारित होना चाहिए था कि क्योंकि २६ जून १९७५ को लोकसभा के कुछ सदस्यों को अकारण सदन में बैठने से रोका गया था, इस कारण वह लोकसभा अनियमित थी। अतएव जो कुछ उस लोकसभा ने २६ जून १९७५ से लेकर २२ मार्च १९७७ तक किया, वह सब अवैध है। उसको सभा के रिकॉर्ड से निकाल दिया जाये।

सम्भव तो यह प्रतीत होता है कि इस प्रकार के प्रस्ताव को सर्वोच्च न्यायालय में चुनौती दी जाती। तब यह निर्णय हो जाता कि क्या किसी प्रधानमंत्री को यह अधिकार है कि वह लोकसभा के सदस्यों को बिना कारण बताये और उस कारण को बिना लोकसभा में रखे लोकसभा में उपस्थित होने से रोक सकता है ?

वस्तुस्थिति यह है कि जनता पार्टी के कर्त्ता-धर्त्ता यह समझते प्रतीत होते हैं कि जो कुछ इन्दिरा गांधी ने किया था, वह गलत नहीं था। यदि उनके काल में भी आवश्यकता पड़ी तो वे भी आपात्स्थिति लगायेंगे और वे भी विपक्षी दल के लोगों को बिना कारण बंदी बनाने की इच्छा करेंगे।

परन्तु जब आपात्-स्थिति वैध स्वीकार कर ली गयी तो फिर उसमें जो कुछ हुआ, वह भी स्वीकार क्यों न कर लिया जाये ? झगड़ा तो रहा नहीं। अन्तर केवल यह पड़ा है कि इन्दिराजी को श्री मोराजी देसाई पहले पराजित नहीं कर सके थे। अब आपात्स्थिति से जनता का रोष देख मोरारजी ने इन्दिरा को पराजित कर गद्दी सम्भाल ली है।

जनता पार्टी की एक अन्य घोषणा थी कि मंहगाई को दूर करेंगे। मंहगाई किस चिड़िया का नाम है, यह वे जानते प्रतीत नहीं होते। हमने बताया है रुपये के गिरते मूल्य के अनुपात से मूल्यों के बढ़ जाने को महँगाई कहते हैं।

रुपये का मूल्य लगाया जाता है व्यक्ति के कार्य को देख कर। व्यापारी अथवा किसी उद्योग-पति की आय से अनुमान लगाया नहीं जा सकता।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कारण यह कि उसकी आय में कई अन्य तत्त्व भी सम्मिलित हैं। केवल रुपये की क्रय शक्ति ही कारण नहीं। उदाहरण के रूप में चाँदनी चौक का एक दुकानदार यदि सन् १९४५ में सौ रुपये रोज की बिक्री करता था तो आज उसकी बिक्री रुपये की क्रय-शक्ति के अतिरिक्त कारणों से भी है।

परन्तु एक सरकारी कर्मचारी अथवा एक घरेलु सेवक का वेतन रुपये की शक्ति से सीधा सम्बन्ध रखता है। उदाहरण के रूप में सन् १९२० में एक चपरासी का वेतन पन्द्रह रुपये होता था। तब एक रुपये का चौदह-पन्द्रह सेर गेहूँ मिलता था। आज एक चपरासी का वेतन दो सौ रुपये के लगभग है, परन्तु गेहूँ का मूल्य डेढ़ रुपये किलोग्राम से भी अधिक है। जहाँ चपरासी का वेतन बढ़ा है बारह-तेरह गुणा, वहाँ गेहूँ का मूल्य बढ़ा है कम-से-कम तीस गुणा। इस कारण महँगाई है।

केन्द्र सरकार के एक सुपरिन्टेंडेण्ट का वेतन लगभग पाँच सौ से आरम्भ होता था। तब गेहूँ का मूल्य था तीन रुपये मन। अब गेहूँ का मूल्य है साठ रुपये मन और सुपरिण्टेण्डेण्ट का वेतन पन्द्रह सौ रुपये के लगभग है।

इसी प्रकार एक क्लर्क का वेतन दस गुणा बढ़ा है, परन्तु गेहूँ का मूल्य चौदह-पन्द्रह गुणा बढ़े हैं। इस कारण महँगाई है।

यह अनुपात जनता पार्टी के शासन काल के आरम्भ में कम होता प्रतीत हुआ था, परन्तु इसमें कारण यह था कि तब सरकार के समाजवादियों की अपनी 'बुद्धि' प्रयोग नहीं हो रही थी। इस वर्ष बहुत अधिक हिम्मत से 'बुद्धि' का 'प्रयोग' बढ़ा है। बजट में घाटा अभूतपूर्व दिखाया है और कीमतें बढ़ने लगी हैं।

फसल अच्छी हुई थी, परन्तु सरकार ने कीमतें स्थिर रखने अथवा कीमतों में वृद्धि करने के लिए कृत्रिम उपाय किए थे।

अभिप्राय यह है कि रुपये की क्रय शक्ति को बढ़ने नहीं दिया। इसे बलपूर्वक स्थिर रखने का यत्न किया गया है।

इसी प्रकार जनता पार्टी के घोषणा-पत्र की अन्य बातों के विषय में विचार किया जा सकता है।

यह ठीक है कि पुलिस [illegible] को पकड़ नहीं रही। परन्तु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इससे गुनाहगार भी तो पकड़े नहीं जा रहे।

एक और निन्दनीय बात और प्रकट हुई है। लाखों की संख्या में ऐसे लोग जेलों में बंद हैं, जिनके मुकदमे सालों से चल रहे हैं और निर्णय नहीं हो पाता।

कुछ एक को तो इतने समय से बंदी किया हुआ है कि यदि उनका दोष सिद्ध हो जाता तो उनकी कैद की अवधि वर्तमान बंदी जीवन से कम होती।

एक मुकद्दमा अदालत में सन् १९७१ में जाता है और उसके 'इशू' अर्थात् आरोप १९७८ तक नहीं बन पाये।

यह है डिमोक्रेसी, प्रजातंत्र, जिसमें प्रजा भागीदार माना जाती है। हम समझते हैं कि डिमोक्रेसी तो छलना मात्र है। यह उन लोगों के राज्य पद पा जाने का साधन है जो धूर्त तो हैं परन्तु राज्य कार्य के सर्वथा अयोग्य हैं।

यह इस कारण है कि डिमोक्रेसी पाँच वर्ष के बाद वयस्क मतदान से कुछ एक को प्रतिनिधि चुन कर लोकसभा में भेज देने का नाभ है।

न तो जनता जानती है कि क्यों इनको चुना गया था और न ही यह जानती है कि चुना हुआ व्यक्ति उस काम के योग्य भी है अथवा नहीं।

यह कह सकते हैं कि यह स्थिति भारत की विशेष है, क्योंकि यहाँ प्रजातंत्र अभी आरम्भिक अवस्था में है। परन्तु इंग्लैण्ड, फ्रांस इत्यादि देशों में डिमोक्रेसी सुचारु रूप में कार्य कर रही है।

हम इस बात से मतभेद रखते हैं। इंग्लैण्ड का उदाहरण ले सकते हैं। आज से चार वर्ष पूर्व वहाँ मजदूर सरकार बनी थी। आज धनी लोगों की सरकार बनी है। अर्थात् तब लोग नहीं जानते थे कि सरकार जो वचन दे रही है, उनका पालन नहीं करेगी। और अब उस सरकार को असफल समझ एक उससे उलटे मत वाली सरकार बनायी गयी है। यह असम्भव नहीं कि एक-दो वर्ष में पासा पुनः पलट जाये और पुनः मजदूर सरकार बन जाये। यही यदि सरकार चलाने का ढंग है तो इसमें क्या अच्छी बात है? जो लोग पाँच-चार वर्ष के उपरान्त की बात जान नहीं सकते, उन्हें लाखों की किस्मत के मालिक बनाया जा रहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बुद्धिमान व्यक्ति अपनी नाक से बहुत दूर देखने की सामर्थ्य रखता है। इस कारण हम समझते हैं कि वयस्क मतदान से चुनी सरकार बुद्धि-शील सरकार नहीं हो सकती।

इस पर भी हम प्रजातंत्र को एक राजा के राज्य से श्रेष्ठ मानते हैं। परन्तु प्रजातंत्र का अर्थ है, वह राज्य जिसमें प्रजा सक्रिय भाग ले। परन्तु प्रजा का जो घटक जिस बात के योग्य हो, उसी में उसका सहयोग लिया जाये, तब ही प्रजातंत्र सफल हो सकता है।

यह नहीं कि रायबरेली के किसानों ने पहले तो उस व्यक्ति के पक्ष में राय दी जो देश की प्रधानमंत्री बनने वाली थी और पीछे उन्हीं किसानों ने उसे चुन दिया जो अन्य राजनीतिक रंग से रंगा बुद्धिविहीन गुणों का प्रदर्शन ही कर सका है। यदि सन् १९७१ में प्रजा का चुनाव ठीक नहीं था तो सन् १९ ७ में भी ठीक नहीं हो सकता। वस्तुतः दोनों गलत थे। क्योंकि साधारण जनता योग्य तथा शिक्षित नहीं थी।

इस कारण हम इस प्रकार की निर्वाचन-पद्धति को दोषपूर्ण मानते हैं।

इसी कारण हमने यह कहा है कि जो जिसके योग्य हो उसे वही करने की स्वीकृति देना ही प्रजातंत्र है।

इसके छिए हमने पूर्व खण्डों में विधि बतायी है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपसंहार

व्यक्ति और समाज का प्रत्येक कार्य बुद्धियुक्त हो, इसी कारण राज-नीति में मतदान को बुद्धियुक्त बनाने के लिये हमने कुछ सुझाव दिये हैं।

बुद्धि से हटकर कार्य अर्थात् जो कार्य स्वभाव अथवा कोरी श्रद्धावश किया जाता है, वह बहुत ही हीन परिणामों वाला होता है। यही है इस पुस्तक की पृष्ठभूमि। इसी के अनुरूप हमने कुछ-एक बुद्धिविहीन समा-घोषों के विषय में लिखा है।

उदाहरण के रूप में जनमत, समाजवाद, सेक्यूलरिज़्म इत्यादि शब्द हैं जो देश के राजनीतिक वातावरण को दूषित कर रहे हैं। ये शब्द अस्थिर अर्थ वाले हैं, इस कारण इनकी छाया में राजनीतिक स्वार्थियों को गुल-छर्रे उड़ाने का अवसर मिलता है।

जनता पार्टी में भी इन अर्थहीन समाघोषों के कारण ही घोर-अव्यवस्था फैली हुई है।

हमारा सुनिश्चित मत है कि कांग्रेस के शासन काल में भी, इन सेक्यूलरवाद तथा समाजवाद जैसे महान् दूषित समाघोषों के कारण ही मैनन और मुन्दरा, धर्मतेजा और इन्दिरा जैसे पनप सके थे। और जनता के शासन काल में कर्पूरी ठाकुर, रामनरेश यादव और देवी लाल इत्यादि 'महापुरुष' मनमानी करने का साहस कर सके हैं।

समाजवादी विख्यात होने की लालसा और सेक्यूलरवादी प्रकट होने का मोह ही है जिसने जनता पार्टी की वर्तमान दुर्दशा कर रखी है। दोनों के अर्थ अस्थिर हैं और इनसे भाई-भतीजों को मनमानी करने का अवसर प्रचुर मात्रा में मिलता है।

तनिक विचार करिये कि जनता पार्टी के प्रधान का, ठीक उसी दिन जिस दिन देवीलाल के त्यागपत्र को विधायकों ने सर्व सम्मति से स्वीकार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया, प्रधानमंत्री मोरारजी देसाई के विरुद्ध आरोप कि वह ही सब कुछ खराबी कर रहे हैं, क्या अर्थ रखता है ? मंत्रि-मण्डल का एक अन्य सदस्य कहता था कि जनता पार्टी अपना कर्त्तव्य पालन नहीं कर रही। वह भी मंत्रिमण्डल के किसी निर्णय में ढील का दोष प्रधानमंत्री पर लगा रहा है (उसका शब्द था— इम्पोटेंण्ट') । भाग्यवश अब वही व्यक्ति देश का प्रधान मंत्री बन गया है । देखेंगे कि वह इन्दिरा गांधी को कितना दण्ड दिलाता है ?

परन्तु यह तो समाजवादियों की रीति है। देश में सन् १९४७ से आजकल जितनी भी वैमनस्यपूर्ण और दूषित तथा हानिकर नीतियाँ दिखाई दी हैं, वे सब इन समाजवादियों के कारण ही हैं।

तनिक स्मरण करें तो बात स्पष्ट हो जायेगी। स्वराज्य के आरम्भ काल से ही झगड़ा पण्डित जवाहरलाल और श्री पटेल में था । जवाहरलाल था समाजवादी और पग-पग पर अपने से आयु और कार्यकुशलता में बड़े व्यक्तियों की निन्दा मंत्रिमण्डल के भीतर और बाहर करता रहता था।

फिर झगड़ा हुआ जवाहरलाल और कृपलानी में। दोनों समाजवादी थे और खूब झगड़ा हुआ और अन्त तक कृपलानी साहब की पण्डितजी से कभी नहीं बन सकी ।

इसके बाद झगड़ा हुआ जवाहरलाल और पुरुषोतम दास टण्डन में। टण्डन समाजबादी नहीं थे । पटेल तथा कृपलानी की भाँति जवाहरलाल उनको भी सहन नहीं कर सका । परिणाम हुआ टण्डन को राज्य सभा तथा कांग्रेस से बाहर आना पड़ा ।

मैनन और जवाहरलाल दोनों समाजवादी थे। झगड़ा हुआ तो पुनः सहयोग नहीं हो सका। जवाहरलाल और बाबू जयप्रकाश नारायण का विवाद भी स्थायी हो गया । दोनों समाजवादी थे । झगड़ा हुआ जवाहरलाल और राज गोपालाचार्य का । एक समाजवादी था और दूसरा हिन्दू विचार की ओर झुकता हुआ प्रतीत होता था। राजाजी सरकार से बाहर हो गये और जवाहरलाल दनदनाते रहे ।

फिर जवाहरलाल और राजेन्द्र प्रसाद का झगड़ा हुआ। राजेन्द्र प्रसाद एक तरफ हट गए और जवाहरलाल अपनी हठ पर डटे रहे ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तदनन्तर झगड़ा हुआ इन्दिरा गांधी और मोरारजी देसाई में।

दोनों समाजवादी हैं। पहले गद्दी श्रीमती गांधी के पास थी। पीछे गद्दी मोरारजी के पास आयी। परन्तु दोनों असन्तुष्ट थे। दोनों में कठोर वैमनस्य था। यह वैमनस्य सिद्धान्तों का नहीं था। मोरारजी देसाई, चरणसिंह और राजनारायण का झगड़ा भी सैद्धान्तिक नहीं है।

हम समझते हैं कि समाजवादी कभी भी, न परस्पर न विपक्षी विचार वालों से सहचारिता रख सकते हैं। सदा झगड़ते हैं और सदा इस ताक में रहते हैं कि किस प्रकार दूसरे को मात दे सकते हैं।

समाजवाद और बुद्धिवाद में झगड़ा होने पर बुद्धिवादी देश में शान्ति रखने के लिये मौन हो पीछे हट जाते हैं, परन्तु समाजवादी सदा लट्ठ लिये लड़ने को तैयार रहते हैं।

वास्तव में दोष समाजवाद में है। यह समाज के नाम पर स्वार्थ सिद्धि का दूसरा नाम है।

इसमें कारण है। समाजवाद का अर्थ है कि समाज (जिसका प्रतिनिधि वे अपने को मानते हैं) सर्वोपरि हैं। अतः राज्य प्रत्येक का लक्ष्य बन जाता है और फिर झगड़े होते हैं। सब कर्त्तव्य को भूल जाते हैं।

स्वराज्यकाल के तीस वर्ष का यही इतिहास है। समाजवादी अपने को परमात्मा समझता है और 'परमात्मा' किसी से समझौता कैसे कर सकता है? सब समाजवादी अपने को परमात्मा पद पर पहुंचा हुआ समझते हैं। एक देश में दो परमात्मा नहीं हो सकते।[1]

: २ :

हमने ऊपर लिखा है कि जनता पार्टी रह नहीं सकती। इस कथन में कारण यह है कि इस पार्टी के संगठन में कोई भी बुद्धियुक्त आधार नहीं है। हमारे इस कथन का प्रमाण इसी जुलाई मास के आरम्भ में मिल गया है। जनता पार्टी इस प्रकार ढह कर ढेर हो रही प्रतीत होती है जैसे

---

१. इस विषय पर लेखक की रचना 'धर्म तथा समाजवाद' विस्तृत विवेचन प्रस्तुत करती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

ताश के पत्तों का बना घर किंचिन्मात्र हवा के झोंके से ढेर हो जाता है। इस दल के नेता जो इस दल के आश्रय अपनी महत्वाकांक्षाएं पूर्ण कर रहे थे, यत्न कर रहे हैं कि इस ताश के पत्तों को पुनः खड़ा कर दें। वे सफल हो भी सकते हैं और सफल नहीं भी हो सकते। आखिर ढह गये ताश के पत्ते भी पुनः खड़े किये जा सकते हैं, परन्तु वे ताश के पत्तों के घर से कुछ अधिक नहीं बना सकते।

जनता पार्टी देश की अन्य सब पार्टियों से अधिक अबुद्ध संगठन है। इसका आधार था इन्दिरा गांधी को पदच्युत करना और वह भी अबुद्ध ढंग से। इस कारण हमारा मत था और अब भी है कि यह दल उतने काल तक भी नहीं रह सकता जितने काल तक कि कोई भी दल देश में रहा है।

सन् १९७७ के आरम्भ में इस लेखक ने एक उपन्यास लिखा था—'यात्रा का अन्त'। उस उपन्यास में यह प्रकट करने का यत्न किया था कि यात्रा का आरम्भ ही अन्त से हुआ है। इस दल ने अपना कार्य महात्मा गांधी की समाधि पर सजदा देकर आरम्भ किया था। हम समझते हैं कि वह यात्रा का अन्त ही था। अभिप्राय यह कि इस दल ने चुनाव जीत कर लोकसभा में बहुमत प्राप्त कर लिया था। चुनाव में समाघोष था—'इन्दिरा हटाओ।' और इन्दिरा हट गयी थी। बस, उस बृहत् प्रयत्न का अन्त हो गया था, परन्तु उसके उपरान्त का उसके पास कोई कार्यक्रम नहीं था। यहां तक कि जो कुछ खराबी इन्दिरा ने की थी, उसको भी समाप्त करने की इनकी नीयत नहीं थी।

यह ठीक है कि इमर्जेंसी हटी थी। परन्तु प्रश्न यह है कि इमर्जेंसी शब्द में कुछ आपत्ति थी अथवा जो कुछ इमर्जेंसी में हुआ था, उससे कुछ विरोध था। हमारा सुनिश्चित मत है कि इन 'बुद्धि के धनियों' के समक्ष कोई कार्यक्रम नहीं था जिससे ये इमर्जेंसी में हुए अनर्थों को पुनः होने से रोक सकें।

'मिसा' अभी तक है यद्यपि सरकार उसका प्रयोग करने से डरती है। निवारक बंधी कानून (detention act) अभी है। मकानों का गिराना अभी तक है और सन्तान-निरोध के उपाय अभी भी चल रहे हैं। इसमें से किसी भी बात का विकल्प इस दल के पास नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वही समाजवाद, वही नेहरू और इन्दिरा का हिन्दू विरोधी व्यवहार, राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ और परमात्मा के अस्तित्व का विरोध, वही शराब, वेश्यागमन, झूठ-फरेब को चालू रखने की योजना, वही गोमांस की बिक्री से देश में विदेशी मुद्रा का लालच, वही जीवन में विषमता और सरलता का विरोध—सबके सब दुर्गुण इन महापुरुषों में भी हैं और इनको हटाने का अथवा इनके विकल्प का इनके पास कोई उपाय नहीं है।

यदि इन्दिरा गांधी ने तुर्कमान गेट के पुराने मकानों को अवैध ढंग से गिराया था तो इस दल ने तुगलकाबाद में बने मकानों को गिराया है। यदि इन्दिरा गांधी ने एक आर्यसमाज का मन्दिर गिराया था तो इसने भी एक मन्दिर गिराकर समानता प्राप्त कर ली है। यदि इन्दिरा रूस के साथ घी-शक्कर थी तो यह चीन के साथ हाथ मिलाने में बेचैन हो रहे प्रतीत होते थे।

और कुशिक्षा, महँगाई, लोकसेवाओं में कुप्रबन्ध, सरकारी कर्मचारियों को जनता के सिर पर बैठाने का कुचक्र वैसा का वैसा ही है।

तनिक इसकी कारगुजारी (performance) का निरीक्षण करें तो कुछ ऐसा समझ आयेगा कि इन्होंने किया वही है जो इन्दिरा गांधी कर रही थी अथवा करना चाहती थी। केवल मौखिक रूप से उसका प्रतिवाद किया था। वह भी जनता को धोखा देने के लिये।

संविधान में जो दोष इमर्जेंसी के कारण अथवा इन्दिरा गांधी की तानाशाही के कारण आये थे, वे शब्दों के हेर-फेर के अतिरिक्त अन्य किसी भी रूप में प्रभावहीन नहीं हुए। इतना ही नहीं, जो जवाहरलाल नेहरू और इन्दिरा गांधी चाहते हुए भी अपने तीस वर्ष के राज्य में नहीं कर सके थे, इन्होंने कर दिखाया है। सम्पत्ति का अधिकार मौलिक अधिकार नहीं रहने दिया।

एक बात और हुई है। सरकारी कर्मचारियों के वेतन बढ़े हैं, और उनकी जनता को हानि पहुंचाने की सामर्थ्य भी बढ़ी है। उन पर नियंत्रण ढीला हुआ है। अब ये कर्मचारी सरकार और जनता दोनों को अंगूठा दिखा घर बैठे वेतन पाने का अधिकार प्राप्त कर चुके हैं।

हमने समाजवाद का वास्तविक अर्थ इसी उपसंहार की प्रथम कण्डिका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में बताया है और जनता पार्टी वास्तविक समाजवादी दल ही है। तभी तो संविधान में चुपचाप समाजवादी राज्य और सेक्यूलरिज़्म को आधार मान लिया है।

जनता दल के छब्बीस मास के समय में एक बात विशेष हुई है कि राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ को पहले से भी अधिक गालियां दी जाने लगी हैं। क्यों? इसका कोई कारण नहीं। इसमें कोई युक्ति नहीं। सोलह महीने की नारेबाजी के बाद एक बात बहुत जोर से कही गई है। वह है 'दुहरी भक्ति' (dual loyalty)। परन्तु दुहरी भक्ति क्या होती है और उसका क्या प्रमाण है, यह किसी भी जनता पार्टी के घटक ने स्पष्ट करने का यत्न नहीं किया।

क्या किसी भी मंत्री ने जन साधारण में अथवा मंत्रिमण्डल तथा लोक-सभा में यह कहा है कि वह यह कार्य अथवा वक्तव्य इस कारण दे रहा है क्योंकि राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ ने उसे ऐसा करने का आदेश दिया है?

पिछले पन्द्रह महीने की मधु लिमये और राजनारायण की बक-झक में एक भी ऐसा प्रमाण अथवा लांछन नहीं है तो फिर दुहरी भक्ति से उनका क्या मतलब है? यह कोरी बकवास नहीं थी क्या? और फिर इसका प्रतिवाद तथा जनता दल के मुख्य अधिकारियों का इस विषय में मौन क्या अर्थ रखता है?

हम समझते हैं कि दुहरी नहीं, बहुमुखी भक्ति प्रत्येक मनुष्य में होती है। इसमें कारण है कि मनुष्य बुद्धिशील प्राणी है। जिसकी बुद्धि जिस ओर जाती है, उस ओर की बात वह मानता है। ऐसा सब मनुष्य करते हैं, परन्तु जब किसी दल के ढांचे में वह कोई अपनी बात इस कारण घुसेड़े, क्योंकि उसको दल से बाहर के व्यक्ति अथवा संस्था ने कहा है, तब ही आपत्ति होनी चाहिये।

एक आर्यसमाजी जब कांग्रेस में जाता है तो क्या वह स्वामी दयानन्द का राजनीति के विषय पर विचारों से विश्वास खो देता है? नहीं। अथवा कोई ईसाई जब किसी राजनीतिक दल में सम्मिलित होता है तो उसकी यशु मसीह में भक्ति नहीं रहती क्या? ऐसा न होता है, और न कोई आशा करता

CC-0.In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। जिस बात की आशा की जाती है, वह यह है कि किसी राजनीतिक संस्था का सदस्य अपने मजहब अथवा मान्यताओं को, बिना दल के साथियों की अनुमति के दल के कार्य में लाने का यत्न करे। ऐसा राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के किसी घटक ने जनता पार्टी में करने का यत्न किया होता तो वह बताया जाता। अन्यथा प्रधानमंत्री और पार्टी के प्रधान को यह बकवास बन्द करानी चाहिये थी। यदि कहीं किसी संघ के स्वयं सेवक ने दल की स्वीकृति के बिना दल की कार्यवाही में संघ की बात घुसेड़ने का यत्न किया है तो उसे प्रकाश में क्यों नहीं लाया गया ?

लेखक अपनी ही बात बताता है। एक समय वह जनसंघ का एक प्रमुख सदस्य रहा है और उसी समय में वह आर्यसमाज का तथा आयुर्वेद महासभा का भी अधिकारी रहा है। परन्तु तीनों के अपने-अपने क्षेत्रों में काम करते हुए कभी यह समस्या नहीं उठी कि यह उसकी भक्ति दुहरी है। न ही वैद्य सभा में कहा न ही आर्यसमाज में। दोनों संस्थाओं को विदित था कि वह जनसंघ में काम करता है। इसमें किसी को भी आपत्ति नहीं थी। हो सकती भी नहीं थी।

परन्तु जनता पार्टी के एक बड़ी संख्या में सदस्यों ने इस प्रकार का बावेला मचाया है। बिहार, उत्तर प्रदेश और हरियाणा में तो खुल कर राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ का विरोध हुआ।

हमारा दृढ़ विश्वास है कि सदस्यों का यह व्यवहार न केवल जनता पार्टी को टुकड़े-टुकड़े कर देगा वरन् देश को भी दीन हीन बना देगा।

जब इस प्रकार के अबुद्ध व्यवहार की न तो प्रधानमंत्री और न ही पार्टी का प्रधान भर्त्सना करे तो यह पार्टी चूर-चूर होनी ही थी।

जनता पार्टी तो टूटनी भी आरम्भ हो गई है। वर्तमान विपत्ति का पार कुछ समय के लिये पाया जा सकता है, परन्तु यह एक अबुद्ध व्यवहार होने से अधिक काल तक दल को एक रहने नहीं देगा।

सबसे बुरी बात जनता पार्टी के साथ यह हो गयी है कि मोरारजी देसाई, चरणसिंह और जगजीवनराम तथा सुना है चन्द्रशेखर भी स्वार्थ की नग्न मूर्ति होकर जनता के सामने आये हैं। ये नग्न स्वार्थ और पद-लोलुपता के भूखे दिखाई देने लगे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा यह मत है कि बुद्धिवाद, कामनाओं से रहित होने के कारण स्वार्थ और पद-लोलुपता से रहित व्यवहार होता है और जिस प्रकार जनता पार्टी के मुख्य नेताओं का व्यवहार रहा है, उससे इनके अबुद्ध व्यवहार के अधिक प्रमाण की आवश्यकता नहीं रही।

जनता पार्टी हमारे इस मत का एक ज्वलन्त उदाहरण है कि बुद्धिवाद ही सुख-सुविधा और सफलता का मार्ग है।

: ३ :

समाजवाद से बुरा है सेक्यूलरवाद। सेक्यूलरवाद ढोंग है। मनुष्य जैसा इस युग में है, सेक्यूलर हो सकता ही नहीं।

कोई ठीक अर्थों में मत-निरपेक्ष तब ही हो सकता है, जब उसकी निष्ठा परमात्मा में अगाध हो। जो परमात्मा को नहीं मानता, वह अपने को ही परमात्मा मानने लगता है और फिर सेक्यूलरवाद उसका मत बन जाता है।

आखिर सेक्यूलरवाद है क्या? शब्द कोष में बहुत-सी नकारात्मक बातें इसके अर्थों में लिखी हैं और जो हुंकारात्मक हैं, उनमें सबसे मुख्य है—profane अर्थात् निषिद्ध व्यवहार करने वाला।

सब सेक्यूलरवादी यह व्यवहार न भी रखें, तब भी कुछ तो भी हुंकारात्मक (positive) होना चाहिये। इस कारण सेक्यूलरवादी सदा अधर में लटका रहता है।

हमारा मत है कि परमात्मा के अस्तित्व को स्वीकार करना तथा एक जीवित प्राणी में आत्मा को स्वीकार करना और फिर उस आत्म-तत्त्व को अनादि मानना सेक्यूलरवाद की परिधि में आते ही नहीं।

उपरोक्त तीनों बातें बुद्धिवाद हैं (अर्थात् वैज्ञानिक तथ्य हैं)। यदि इनको स्वीकार करें तो सेक्यूलरवाद रह सकता ही नहीं, क्योंकि वह अबुद्धवाद है।

दुर्भाग्य की बात है कि वर्तमान जनता पार्टी ने इन दोनों वादों (समाजवाद और सेक्यूलरवाद) को भारत के संविधान का स्थिर अंग बना दिया है। परिणामस्वरूप यह पार्टी रह नहीं सकेगी। समाजवादी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने से जनता पार्टी के घटक परस्पर लड़ेंगे और सेक्यूलरवादी होने से ये अबुद्ध व्यवहार रखेंगे। इन दोनों बातों के रहते दल रह नहीं सकेगा।

यह दल टूक-टूक हो जायेगा और देश की नौका गहरे भँवर में पड़ जायेगी।

हम समझते हैं कि इस सयय देश को आवश्यकता है बुद्धिवाद की। बुद्धिवाद के लिए स्थितप्रज्ञ होना एक अनिवार्य शर्त है। स्थिर बुद्धि प्राप्त करने के लिए इस जगत् को एक स्थिर नियम से चल रहा मानना पड़ता है। इसे संस्कृत में ऋत् कहते हैं। जो ऋत् को समझते नहीं, किसी स्थिर नियम को स्वीकार नहीं करते, उनकी बुद्धि कामनाओं के पीछे भागती है।

कामना धन, स्त्री, पुत्र, परिवार के अतिरिक्त मान-प्रतिष्ठा के लिए भी हो सकती है। किसी के लिए भी हो, कामना कामना ही है और यह बुद्धि को अस्थिर करने में सहायक होती है।

बस, यही रोना है भारत की वर्तमान अवस्था में। इसको दूर करने के कुछ उपाय हमने संकेत रूप में इस पुस्तक में बताये हैं।

: ४ :

भारत के रोग की चिकित्सा का प्रथम चरण है बुद्धिवाद को अपनाना। बुद्धिवाद का विश्लेषण यदि एक ही वाक्य में किया जाये तो यह है कि बुद्धिमान् व्यक्तियों को अपना पथ-प्रदर्शक मानना। बुद्धिमान् सड़कों पर नहीं घूमते। इनको ढूंढने के लिए शिक्षा केन्द्रों में इनकी खोज करनी होगी।

वर्तमान शिक्षा केन्द्रों को वास्तविक अर्थों में हम शिक्षा केन्द्र नहीं मानते। क्योंकि ये शरीर और इन्द्रियों के सुधारने के केन्द्र मात्र हैं जब कि शिक्षा का अभिप्राय है मन, बुद्धि और जीवात्मा को सुदृढ़ और सुतीक्ष्ण करना।

यद्यपि वर्तमान शिक्षा केन्द्रों में मन, बुद्धि और जीवात्मा की ओर ध्यान नहीं दिया जाता, इस पर भी बुद्धिमानों की खोज वहां ही होगी और जब बुद्धिमानों की खोज आरम्भ होगी, यह असम्भव नहीं कि वहां

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कई इन लक्षणों से युक्त मिल जायें ।

विद्या-केन्द्र राज्य (राजसी स्वभाव वालों से) पृथक् होने चाहियें । इसका उपाय हमने बताया है और फिर इस दृष्टि से शिक्षितों में बुद्धिमानों की खोज की जाये । बुद्धिमान का सबसे श्रेष्ठ गुण है—कामना रहित होना । इस परीक्षा को सदा समक्ष रख खोज की जायेगी तो वर्तमान शिक्षा-केन्द्रों में भी अनेक व्यक्ति यथार्थ रूप में स्थितप्रज्ञ मिल जाने असम्भव नहीं ।

शिक्षा है विद्यार्थी के शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि और सर्वोपरि जीवात्मा को बलवान और तीक्ष्ण बनाना । इस शिक्षा का आरम्भ जीवात्मा से होता है । जीवात्मा जब भी यह स्वभाव बना ले कि बुद्धि को ही पथ-प्रदर्शक माने तो वह भटकता हुआ भी सीधा मार्ग पा सकने की आशा रख सकता है । केवल श्रद्धा अथवा कामनाओं के पीछे भागने वाला सदा भटकता रहेगा ।

अतः मुख्य बात है जीवात्मा को बुद्धि की सम्मति पर कार्य करने का स्वभाव डालना और अपने जीवात्मा को इतना सबल बनाना कि वह इन्द्रियों और मन के प्रलोभनों में न फँसे ।

बस, यही शिक्षा का सार है और यही उन्नति का मार्ग है ।

इसके लिए उपाय है । उन उपायों को राज्य व्यवहार में नहीं ला सकता । अतः जनता को ठीक मार्ग पर ले जाने का मार्ग तभी मिलेगा जब शिक्षा राज्य के पंजों से मुक्त होगी । यही मुक्ति का मार्ग है ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

राष्ट्र राज्य और संविधान	गुरुदत्त	35.00
बुद्धि बनाम बहुमत	गुरुदत्त	30.00
भारत में राष्ट्र	गुरुदत्त	30.00
भारत गान्धी नेहरू की छाया में	गुरुदत्त	60.0
धर्म तथा समाजवाद	गुरुदत्त	55.
स्व अस्तित्व की रक्षा—1	गुरुदत्त	35.00
स्व अस्तित्व की रक्षा—2	गुरुदत्त	25.00
वर्तमान दुर्व्यवस्था का समाधान हिन्दू राष्ट्र	गुरुदत्त	40.00
हिन्दुत्व की यात्रा	गुरुदत्त	40.00
मनुष्य और समाज	गुरुदत्त	25.00
धर्म संस्कृति और राज्य	गुरुदत्त	180.00
मैं हिन्दू हूँ (हिन्दू धर्म की मान्यताएँ)	गुरुदत्त	35.00
अन्तिम यात्रा (डॉ. मुखर्जी की)	गुरुदत्त	25.00
ज़िन्दगी का सफर—	बलराज मधोक	65.00
1. लद्दाख से दिल्ली तक		
2. स्वतन्त्र भारत की राजनीति का संक्रमण काल	बलराज मधोक	85.00
जीत या हार	बलराज मधोक	40.00
जीत में हार	बलराज मधोक	30.00
भारतीयकरण	बलराज मधोक	20.00
मोपला	वीर सावरकर	30.00
हिन्दुत्व	वीर सावरकर	30.00
हिन्दुत्व के पंच प्राण	वीर सावरकर	30.00
गोमान्तक	वीर सावरकर	30.00
प्रतिशोध (नाटक)	वीर सावरकर	30.00
अमर सेनानी सावरकर	शिवकुमार गोयल	30.00
लोकोत्तर द्रष्टा सावरकर	हरिभाऊ देसाई	25.00
महामना सावरकर	हरिभाऊ देसाई	25.00
धरती है बलिदान की	शान्ताकुमार	30.00
शक्तिपुत्र शिवाजी	सीताराम गोयल	40.00

167947
Gurukula ... University, Haridwar
081
167947
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GURUKUL KANGRI LIBRARY

	Signature	Date
Access No.		
Class No.		
Cat No.		
Tag etc.		
E.A.R.		
Recomm. by		
Data Ent. by		
Checked		

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

पुस्तकालय
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार
वर्ग संख्या R 089.9143 GUR-B आगत संख्या 167947

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित 30वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए। अन्यथा 50 पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब शुल्क लगेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GURUKUL KANGRI LIBRARY

	Signature	Date
Access No.		
Class No.		
Cat No.		
Tag etc.		
E.A.R.		
Recomm. by		
Data Ent. by		
Checked		

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हिन्दी साहित्य सदन

2 बी.डी. चैम्बर्स, 10/54, डी.बी. गुप्ता रोड़, करोल बाग,
नई दिल्ली-110005, टेलीफैक्स : 23553624, 51545969
e-mail : indiabooks@rediffmail.com

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar